परिच्छेद १

बिषय परिचय

भारतीय कवि एवं महात्मा प्राचीन काल से ही भक्त, परोपकारी, ज्ञानी एवं बैरागी रहे हैं । उनके नाम की लोंक प्रियता अथवा यश प्राप्त हो उसकी चिन्ता उन्होंने कभीं नहीं की । अत: कुछ रचना करते हुए भी वे अपना परिचय न दे सके । आत्म प्रदर्शन की भावना से वे कोसो दूर थे । वे अपने आराध्य देव की गाथां गाते-गाते उनके प्रेम मे इतने निमग्न हो जाते थे कि उन्हें अपने संबध मे कुछ याद ही नही रहता था । किसी भी कवि की जीवनी मुख्यत: दो रुपसे जानी जा सकती है अन्त:: साक्ष्य और वाह्य साक्ष्य । अन्त: साक्ष्य से तात्पर्य उस सामग्री से है जो स्वयं कवि द्वारा अपनी रचनाओं में परोक्ष या प्रत्यक्ष रुप में कही गयी है । वाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत उस कवि के समय के तथा कुछ बाद के लेखकों के कथन से आते हैं जो उन्होंने उस कवि के संबन्ध में कहे हैं । कभी कभी कुछ सामग्री विश्वस्त जनश्रुतियों से भी प्राप्त हो जाती है । जन्मतिथी के विषय “सूरसारावली” और “साहित्य लहरी” के एक- एक पद के आधार पर निश्चित की गयी है -

गुरु परसाद होत यह वरहन सरसठ वरस प्रवीन

शिव विधान तप कियो बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन

\- -सूरसारावली

मुनि पुनि रसन के रस लेख

दसन गौरी नन्द को लिखि सुजन संवल पेख

\- -साहित्य लहरी

"सूरसागर" सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है । ईसी एक रचना के आधार पर सूरदास हिन्दी साहित्य के प्रकाश स्तम्भ (Mile Stone) माने जाते हैं । चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार जिस समय सूरदास गऊ घाट पर सन्यासी वेश में रहते थे उस समय भी वे पद रचना करते थे । सूर के ईष्ट देव कृष्ण ही थे । वे वात्सल्य और श्रृंगार के अद्धितीय कलाकार के रुप में प्रतिष्ठित हैं । ईन दोनो क्षेत्रों में जितनी अन्त:र्दृष्टि का विस्तार सूर का है उतना अन्य कवियों का नहीं ।

सूरदास के गुरु श्री वल्लभाचार्य जी थे जो श्री कृष्ण के वाल रुप तथा युवा रुप के ही आराधक थे । उन्होनें श्री कृष्ण के इन्ही दो पक्षों का स्पर्श किया था अर्थात वे माधुर्य भाव के उपासक थे । महा भारत के कृष्ण की तेजस्वी मूर्ति की तो तुलना ही क्या ? वास्तव में कृष्ण का जीवन भी अनेक विविधताओं से युक्त था । कृष्ण भक्त कवियों को दीक्षा ही ऐसी मिली थी कि वे केवल श्री कृष्ण के मनोरंजक रुप को ही ग्रहण करें । यदि वे कहीं प्रसंगवश कृष्ण के लोक रक्षक रुप का वर्णन भी कर गये हैं तो उनमे भी उनकी रुचि नही दिखाइ देती । बल्लभ सम्प्रदाय मे कृष्ण केवल कोमल ही चित्रित हैं कठोर नहीं । उनका भक्ति वैध नही थी वह तो रागानुगा की भक्ति थी । वैधि भक्ति का संबन्ध तो नीति तथा सदाचार आदि लौकिक बातों से होता है रागानुगा भक्ति में नीति तथा सदाचार आदि से कोई संबन्ध नहीं होता । उसमें तो केवल भक्त के हृदय की तल्लीनता ही अनिवार्य है । वल्लभाचार्य जी पुष्टि मार्गी सिद्धान्तों पर विश्वाश रखते थे । अत: सूरदास जी पर पुष्टि मार्ग का प्रभाव अनिवार्य रुप से पडा है । इस मार्ग मे भी कृष्ण उपास्य देव है । श्री कृष्ण से तात्पर्य उसी परम ब्रम्ह परमेश्वर, निर्गुण निराकार ईश्वर से है जो सृष्टि की उत्पत्ति, विनाश एवं रक्षा करने वाला है । साथ ही आचार्य जी ईश्वर को निर्विकार नहीं मानते थे । उनका मत था कि वह अवतार लेतें है और अपने भक्तों को प्रसन्न करतें हैं । इस प्रकार एक ओर तो वे अक्षर पर ब्रम्ह है और दुसरी ओर भक्त वत्सल मानुष रुपधारी एवं लीला विहारी श्री कृष्ण हैं । श्री आचार्य जी

के मतानुसार कृष्णानुग्रहरुपहि पुष्टि अर्थात कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है । श्री कृष्ण भगवान जिस पर अनुग्रह करतें हैं, उसे ही उनकी भक्ति प्राप्त होती है ।

सूरदास ने सखा भाव भी भक्ति की है । वैसे आर्चाय जी से दीक्षा लेने के पूर्व सूर की भक्ति मे दास्य भावना का सुन्दर रुप दीखाई देता है -

"रे मन कृष्ण नाम कहि लीजै

गुरु के वचन अटल करि मानो

साधु समागम कीजै । "

सुरसागर मे सूरका भाव की भक्ति के पद प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होते है । इस भाव की भक्ति मे भक्त अपने ईष्ट देव के साथ कुछ अधिक सान्निध्य स्थापित कर लेता है । ईष्ट देव की विविध प्रकार की लीलाओं में वह साथ-साथ विचरण करता है ।

भक्तों की सदैव से यह परिपाटी रही है कि भगवान को महान एवं स्वयं को लघु मानतें रहें हैं । स्वयं को लघु ौर भगवान को महान मानकर भक्त जिस भाव की अभिव्यक्ति करता है वह दैन्य भाव के अन्तर्गत आता है । सूरदास ने इस भाव की अभिव्यक्ति ईन पँक्तियों मे की है -

जौ हम भले बुरे तो तेरे ।

तुम्हे हमारी लाज बड़ाई बिनती सुनि प्रभु मेरे ।

महाकवि सूरदास का हिन्दी साहित्य मे जो इतना ऊँचा स्थान है उसका एक मात्र कारण यह है कि वात्सल्य और श्रृंगार के अन्यतम कवि है । इन दोनो क्षेत्रों मे जितनी अन्तर्दृष्टि का विस्तार सूरका है उतना और कवि का नहीं । श्री कृष्ण के जन्म

से लेकर मृत्यु होने तक के पद सूरसागर मे संग्रहीत है । वाल सुलभ चेष्टाओं तथा मनोभावों का सुन्दर समन्वय सूरदास की विशेषता है -

मैयाँ मोरी मै नहीं माखन खायो

X X X X

मैयाँ कबहि बढेगी चोटी

X X X X

मैयाँ मोरी दाऊ बहुत खिजायो ।

प्रस्तुत शोधपत्रका शिर्षक “भक्तिरसके गायक कवि सूरदास” का अध्ययन महत्वपूर्ण है । सूरदासकी काव्य प्रतिभा और व्यापक लोकप्रियता का आधार उनकी हिन्दी रचनायें हैं । सूरदास ने सूरसागर, सूरसरावली और साहित्य लहरी तीन रचनाओ का प्रणयन किया । उपर्युक्त तीन रचनाओ के अतिरिक्त कुछ और रचनायें सुरदासकृत कही जाती है । इन रचनाओ मे नल दम्यन्ती राम जन्म और एकादशी महा काव्य हैं । गोवर्द्धन टीका, दशम स्कन्द टीका, नागरमाला पद संग्रह, व्यहलो, प्राण प्यारी, भागवत भाषा, सूरपच्चीसी, स्फुट पद आदि हैं । सूरसागर महा काव्य सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है । उसी एक रचना के कारण सूरदास हिन्दी साहित्य के प्रकाश स्तम्भ माने गये है ।

शोध समस्या

भक्तिकाल के सगुण शाखा के अन्तर्गत सूरदास का अग्रिम स्थान है । साथ ही इसके माध्यम से निम्न लिखित विशेषताओ का परिचय मिलता है –

१) भक्ति काल के कवियो की भाव धारा का विकास ।

२) भक्ति और श्रृंगारिक कविताओ के रुप मे सुरदास ।

३) भक्ति काल के गायक कवि के रुपमे कविताओं का विशलेषण ।

४) भाव पक्ष के साथ कला पक्ष का विकास ।

शोध का उद्देश्य

१) भक्ति रस के गायक कवि सूरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय

२) सूरदास के गीतो की लोकप्रियता का विश्लेषण

३) गीतो का भाव पक्ष एवं कला पक्ष का महत्व

४) गीतो का विभिन्न दृष्टिकोण से चित्रण ।

पूर्व कार्य की समिक्षा

भक्ति रस के गायक कवि सूरदास की कृतियाँ निश्चित रुपेण भक्ति काल से लेकर आधुनिक काल तक की धरोहर है । विभिन्न विद्वानो द्वारा अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र मे भक्ति एवं श्रृगारिक (संयोग एवं बियोग) पक्ष का सम्यक विवेचन किया गया है ।

शोध का औचित्य, महत्व और उपयोगिता

गायक कवि सूरदास की कविताओ का सम्यक अध्ययन एवं चिन्तन किया गया है साथ ही उन गीतो के अध्ययन से गीति परम्परा मे उनका योगदान का मूल्याङ्कन किया गया है साथ ही आगे के शोध कर्ताओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया है । शोध कार्य एक अभिवृद्धि है । व्यक्ति की अभिवृद्धि सदैव होती है – चाहे वह शारीरिक रुप में हो या मानसिक रुप में । उसके अध्ययन से शोध कर्ता कुशलता पूर्वक सृजनात्मक बिचार को सम्भव बनाता है । सूरदास के बात्सल्य और श्रृगांर रस के चित्रणो मे वात्सल्य चित्रण अधिक काव्य मे प्रतीत होता है ।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री संकलन हेतु पुस्तकालय अध्ययन आवश्यक है साथ ही विभिन्न विद्वानो एवं आलोचकों के साथ विचार विमर्श के द्वारा आवश्यक सुझाव एवं पत्र पत्रिकाओ के माध्यम से प्रकाशित टिप्पणी एवं समीक्षा का संकलन आवश्यक रहा है ।

शोध की रुप रेखा

इस शोध पत्र को ७ परिच्छेदों मे विभाजित किया गया है । आवश्यकता अनुसार विभिन्न परिच्छेदों का विभिन्न शीर्षक उप शीर्षक मे रखकर विषय वस्तु को समाहित किया गया है । अन्त मे निष्कर्ष एवं सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की गयी है । सम्पूर्ण परिच्छेदों के सक्षिप्त चर्चा निम्न प्रकार प्रस्तुत है -

परिच्छेद १

यह शोध पत्र का पहला परिच्छेद है जिसमे विषय परिचय के साथ-साथ शोध समस्या, शोध का उद्देश्य, पूर्व कार्य की समीक्षा, इसका औचित्य,महत्व और उपयोगिता , शोध विधि एवं शोध की रुप रेखा प्रस्तुत की गयी है ।

परिच्छेद २

इस परिच्छेद में भक्तिकाल के कवियों की भाव धारा का विकास की चर्चा की गयी है एवं उनकी रचनाओं पर ध्यान आकर्षित किया गया है ।

परिच्छेद ३

इस परिच्छेद में भक्ति रस के गायक कवि सूरदास की जीवनी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की झाँकी दर्शायी गयी है । भक्ति काल के अन्य कविओं की तरह सूरदास के जन्म एवं मृत्यु के सम्बन्ध मे निश्चित रुप से कुछ कहा नही जा सक्ता है । फिर भी सूरसरावली औंर साहित्य लहरी के आधार पर सूरदास जी का जन्म सम्बत् १५४० कहा जाता है । नलिनी मोहन साम्भाल का मत भी इस बिषय मे दर्शनीय है । उनके अनुसार चैतन्य महाप्रभु का जन्म ई. १४८५ (सम्बत् १५४२) मे हुआ था और किवदन्ती एवं कुछ प्रमाण के आधार पर सूरदास का जन्म चैतन्य महाप्रभु के जन्म के एक बर्ष पहले हुआ था ।

सूरदास का व्यतित्व

हिन्दी साहित्य मे कृष्ण से सम्बन्धित साहित्य जितनी मात्रा मे रचा गया है उतनी मात्रा मे सम्भवतः और कोइ साहित्य नहीं रचा गया । हिन्दी साहित्य के चारों कालों मे कृष्ण कों नायक बनाकर काव्य रचनाएँ हुइ है । कवि के रुप मे सूरदास का

व्यक्तित्व सहज, मर्म स्पर्शी एवं स्वभाविक प्रतीत होता है । एक एक शब्द काव्य के माध्यम से भावों को अभिव्यक्त करता है ।

सर्व प्रथम वे भक्त कवि के रुप मे प्रसिद्ध हैं । वे महा कवि तो थे ही किन्तु कवि होने से पूर्व वे भक्त थे । भक्त पहले थे और कवि बाद मे । स्वयं सूरदास जी ने बताया है –

"श्री गुरु बल्लभ तत्व सुनायो लीला भेद बतायो ।"

अर्थात् स्पष्ट है कि उनके गुरु बल्लभाचार्य जी थे । वे पूर्वी मार्गो के सिद्धान्तो मे विश्वास रखते थे । श्री कृष्ण उपास्य देव है । और श्री कृष्ण से तातपर्य उसी परम ब्रह्म परमेश्वर, निर्गुण निराकार ईश्वर से है जो सृष्टि का उत्पादन विनाश एवं रक्षा करने वाला है । श्री आचार्य जी के अनुसार "कृष्णनुभवहरुपहि पुष्टि" अर्थात् कृष्ण का अनुभव ही पुष्टि है । श्री कृष्ण जिस पर अनुग्रह करते है उसे ही उनकी भक्ति प्राप्त होती है । सूरदास ने दास्य भाव से भक्ति की है दास्य भाव का सुन्दर प्रकाशन निम्न पंक्तियों मे है -

"रे मन कृष्ण नाम कहि ली जै ।

गुरु के बचन अटल कही मानो साधु समागम की जै ।"

भगवान की भक्ति प्राप्त हो जाने पर भक्त को कोइ भय नही रह सकता । उनहोने अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है कि भगवान अद्वैत औंर गुणातीत हैं । फिर भी

सगुण भक्ति की ओर उनका मन अधिक रमा हुआ प्रतीत होता है । वो सद्‌गुणोपासाक कवि हैं । संग्रहीत योजना कृष्ण साहित्य से ही प्रारम्भ होती हैं । कृष्ण साहित्य में भावों का अतिथ्य ही नही वरन उसमे उदारता भी हैं । भक्त होने के कारण उसकी प्राप्ति की तीब्रता ओर अनुराग की तन्मयता प्रकट होती हैं । दैत्य भाव सूरदास के मानस का एक स्थायी भाव हैं, जो उनकी श्रद्धा, विनय शीलता, भक्ति भावना की तीब्रता तथा सहज श्रवण शीलता का परिचायक है ।

लोक प्रियता

काव्य की लोक प्रियता कवि सूरदास को अमर बनाये हुए हैं । काव्य रस के अद्वितीय कलाकार के रुपमे जो विशेषता इन्हे प्राप्त हुआ है वह अन्य कवियों को दुर्लभ है । सूरसागर मे ब्रज का जो सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है उसमे श्री कृष्ण के चित्रण के पल पल वहाँ के गार्हस्थ्य जीवन का भी विस्तार पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है । सूरदास मे श्री कृष्ण के बाल वर्णन का उनकी प्रत्येक चेष्टाओ का जो वर्णन किया है वह अप्रतिम एवं अत्यन्त हृदय स्पर्शी है ।

इस परिच्छेद में सूरदास की रचनाओं की विशेषता एवं विश्लेषण निम्न शिर्षक के रुप में पेश किया गया है ।

१) समान्य परिचय

२) रचनाओ का रुप (सूरसागर, साहित्य लहरी, सूरसरावली)

३) भक्ति गीत एवं श्रृंगार पद (संयोग एवं बियोग)

परिच्छेद ४

गीति काव्य के बिकास मे सूरदास का योगदान कि चर्चा इस परिच्छेद में किया गया है जिसमे-

१) गीति काव्य की परिभाषा

२) बिकास एवं महत्व

समावेश किया गया है ।

परिच्छेद ५

यह **परिच्छेद** काव्य का महत्वपूर्ण पक्ष को समेटे हुवे है जिसमे अलंकार, भाषा शैली रस एवं उद्देश्य आदि उल्लेखित किया गया है ।

परिच्छेद ६

इस में सूरदास को भक्ति रस के गायक कवि के रुप मे लिपिबद्ध किया गया है ।

परिच्छेद ७

और अन्त्य में उपसंहार एवं सन्दर्भ ग्रन्थो की सूची तयार की गयी है ।

परिच्छेद २

भक्तिकाल के कवियों की भाव धारा का विकास

भक्ति काल के सगुण शाखा के अन्तर्गत सूरदास का अग्रिम स्थान है । वे कवि होने से पूर्व वे भक्त थे । उनके गुरु श्री बल्लभचार्य जी थे । ईन्होने उन्ही से दीक्षा पाई थी । श्री बल्लभाचार्य जी पुष्टि मार्गी सिद्धान्तो मे विश्वास रखते थे । अतः सूरदास जी पर पुष्टि मार्गी का प्रभाव अनिवार्य रुप से पडा है -

"श्री गुरु बल्लभ तत्व सुनायो लीला भेद बतायो"

इस मार्ग के सिद्धान्त के अनुसार श्री कृष्ण उपास्य देव है । भगवान जिस पर अनुग्रह करते है उसे ही भक्ति प्राप्त होती है, भक्ति सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यो की समझ में अद्वैतवादी सिद्धान्तों के ग्रहण करने की बात आ गई । कृष्ण भक्ति का अधिकांश प्रचार उन भक्तों के द्वारा हुवा जो बल्लभाचार्य और चैतन्य के समय मे हुए अथवा सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जैसे भक्तों द्वारा हुवा । सूरदास इन भक्तों में अग्रगण्य है । वैसे "अष्टछाप" में बल्लभाचार्य द्वारा परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास, सूरदास, गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुज दास, नन्ददास आदि कृष्ण भक्त कवि है किन्तु इन सब मे सूरदास का स्थान सर्वोपरि है ।

भक्ति और श्रृंगारिक कवि के रुप मे सूरदास

सूरदास भक्त कवि होने के साथ-साथ संगीताचार्य भी थे । उनकी रचनाओं में श्रृंगारिक कविताओं का समन्वय दृष्टिगत होता है । हिन्दी साहित्य मे सूरदास जी का इतना ऊँचा स्थान है इसका एक मात्र कारण यह है कि वे संगीताचार्य भी थे, वात्सल्य और श्रृंगार के अन्यतम कवि हैं । इन दोनों क्षेत्रों में जितनी भावनाओं की विस्तार सूर

का है उतना किसी और कवि को नहीं । वास्तव मे बात यह है कि सूर को गीतिकाव्य की परम्परा जयदेव और विद्यापति से मिली थी, वह श्रृंगार की ही थी । यही कारण है कि इनके संगीत में श्रृंगार रस की प्रधानता रही । इसके साथ दूसरा कारण है उनकी उपासना और स्वरुप । श्रृंगार रस के दो पक्ष- संयोग और वियोग दोनों का विवृत एवं उन्मुक्त चित्रण सूरदास की अप्रतिम प्रतिभा का द्योतक है । वृन्दावन के सुखमय हास परिहास के वीच गोपियों के प्रेम का उदय होता है । गोपियाँ कृष्ण के सौन्दर्य और मोहक रुप एवं चेष्टाओं को देखकर मुग्ध होती है- आचार्य रामचन्द शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "सूर के प्रेम की उत्पति मे रुप लिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है" । सूरदास ने राधा और कृष्ण के विशेष प्रेम की उत्पति ईसी रुप के आकर्षण द्वारा बतायी है -

"खेलत हरि निकसे व्रज खोरी

गये श्याम रवि तनया के तट

अंग लसत चंदन की खोरी ।

X X X X

बूझत श्याम कौन तू गोरी

कहाँ रहति काकी तू वेटी ?

देखी नहि कवहुँ व्रज खोरी"

पंडित राम चन्द्र शुक्ल के शब्दों में -

सूरदासका संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है; प्रेम संगीतमय जीवन की गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वालों को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई पडता । संयोगपक्ष का कुछ चित्र द्रष्टव्य है -

तुम पे कौन दुहावे गैया ?

इत चितवत उत धार चलावत

एहि सिख्यो है मैया ?

X X X X

मै कहा करौं सुतहि नहि, ब्रजरत घर ते मोहि बुलावै ।

मोसो कहत तोहि विनु देखे रहत न मेरो प्राण ।

संयोग पक्ष के जितने भी कीडा विधान हो सकते है उन सभी को सूरदास ने एकत्रित किया है । पनघट प्रस्ताव, कुंज विहार, यमुना स्थान, गो दोहन के समय, राधा के मुख पर दूध की छिटें फेंकना, हिंडोले पर झुलना आदि न जाने कितने संयोग के पल सूरदास ने चित्रित किये हैं ।

वियोग पक्ष

संयोग पक्ष के साथ ही सूर का विप्रलंभ श्रृंगार भी विस्तृत और व्यापक है । वियोग की जितनी भी अन्तर्दशा हो सकती है, उसका चित्रण सूरदास ने विभिन्न रुपो में प्रस्तुत किया है - भावों की तीव्रता और भावों की विविधता दोनों का समन्वय सूरदास

ने अपनी रचनाओं में किया है -दीनता और क्षोभजन्य उदासीनता इन पँक्तियों में द्रष्टव्य है -

संदेशो देवकी सों कहियो

हौ तो धाय तिहारे सुत की माया करति ही रहियो ।

कवियों में प्राकृतिक पदार्थो को उपालम्भ देने की चाल बहुत दिनों से चली आ रही है । किस प्रकार वियोगिनी गोपियाँ अपने वीरान एवँ नीरस जीवन के मिलन न होने के कारण वृन्दावन के हरे- भरे वृक्षों को कोसती है -

मधुवन तुम कत रहत हरे ?

विरह वियोग श्याम सुन्दर के

ठाडे क्यों न जरे ?

X X X X

बरसात की अंधेरी रात्रि मे कभी - कभी वादलों के हट जाने से जो चाँदनी फैल जाती है वह इस प्रकार प्रतीत होती है -

पिया विनु साँपनि कारी राति

कबहुँ जामिनी होति जुन्हैया,

डसि उल्टी ह्वै जाति ।

-इस प्रकार महाकवि सूरदास श्रृंगार रस के अद्वितीय कलाकार हैं । संयोग और वियोग दोनों पक्ष होने से श्रृंगार की व्यापकता बहुत अधिक है । इसीलिए इसे रसराज कहा जाता है । श्री शुक्ल जी के शब्दों में " हिन्दी साहित्य में श्रृंगार रस राजत्व यदि किसी ने पूर्ण रुप से दिखाया है तो सूर ने । यदि श्रृंगार रस रसराज है तो सूर को रस सागर कहना उपयुक्त है ।"

अष्टछाप के इन आठ भक्त कवियों ने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के अनुसार कृष्ण भक्ति में तन्मय होकर अत्यन्त सुन्दर रचनायें प्रस्तुत की है । इन कवियों की सर्वाधिक विशेषता है उनकी भक्ति भावना । इनके अनुसार भगवान मे महात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ तथा सतत स्नेह ही भक्ति है । उन्होंने भक्ति के लिए प्रेम को ही मुख्य बतलाया है । अष्टछाप के सभी कवियों ने अपनी भक्ति भावना को प्रगट करने के लिए प्रेम का ही आश्रय लिया है ।

हिन्दी साहित्य में कृष्ण से संबन्धित साहित्य जितनी मात्रा में रचा गया है उतनी मात्रा में संभवतः और कोई साहित्य नहीं रचा गया । हिन्दी साहित्य के चारों कालों अर्थात् वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल में कृष्ण को नायक बनाकर काव्य रचनायें हुई हैं । वीरगाथाकाल से लेकर आज तक कवि कृष्ण काव्य की रचना करत रहे हैं ।

जयदेव

यदि इस बात पर विचार किया जाय कि हिन्दी साहित्य में कृष्ण-काव्य का आरम्भ किस कवि से माना जाय तो मैथिल कवि कोकिल विद्यापति का नाम लेना उचित होगा । विद्यापति पर संस्कृत के प्रसिद्ध गीतिकार कवि जयदेव का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था । अतः गीत गोविन्द के रचयिता श्री जयदेव को ही कृष्ण काल का वास्तविक जन्म दाता मानना चाहिए । इससे तात्पर्य यह नहीं है कि जयदेव से पूर्व

संस्कृत में कृष्ण से संबन्धित काव्य नहीं है । श्री मद्भागवत आदि कितने ही ऐसे धार्मिक ग्रन्थ है जो श्री कृष्ण संबन्धी काव्यों के आधार है, किन्तु जयदेव की शैली से ही हिन्दी काव्यकार कुछ अधिक प्रभावित हुए हैं ।

अतः कृष्ण काव्य के इतिहास में सर्वप्रथम उनका नाम लेना ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है । सर्वप्रथम " गीत गोविन्द " में ही राधा का व्यक्तित्व प्रस्फुटित हुआ है । इस काव्य में राधा-कृष्ण मिलन तथा कृष्ण की अन्य मधुर लीलाओं का जो वर्णन प्राप्त होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है । श्री जयदेव जी ने संस्कृत में गीत गोविन्द की रचना करके भाषा और भाव दोनों के सौन्दर्य का अच्छा परिचय प्रस्तुत किया है ।

-परमानंद दास

- सूरदास ने वात्सल्य का कोना - कोना अपनी बन्द आँखो से झाँक लिया है । इसके साथ ही परमानंद दास का बाल वर्णन का एक पद द्रष्टव्य है -

माई मिठे हरि के बोलना ।

पाँय पेंजनियाँ रुनझुन बाजे अँग आँगन डोलना

कज्जर तिलक कंठ कठुला मनि पीताम्वर को चोलना

वास्तव मे परमानन्द दास ने बाल वर्णन अत्यन्त सरस एवँ सुन्दर रुप मे किया है, किन्तु सूरदास के बाल -वर्णन सी मनो वैज्ञानिकता, सरसता, स्वभाविकता आदि इनके पदों में उतनी मात्रा में नही मिल सकती । वास्तव में सूर का सा वाल वर्णन परमानन्द दास क्या विश्व का कोई भी कवि नही कर सकता ।

वाल स्वभाव एवं विविध सौन्दर्य के उपकरणों के वर्णनों के साथ - साथ परमानन्द दास ने श्रृंगार रस के भी अत्यन्त सरस एवँ सुन्दर चित्र उतारे है । सूरदास

की भाँति माधुर्य भाव ही इनकी रचनाओं मे प्रदान है । इनकी गोपी भी सूर के समान ही कह रही है ।

जब ते प्रीति श्याम सों कीनी

ता दिन ते मेरे नैननि कबहुँ नींँद न लीन्हीं ।

श्रृंगार वर्णन मे भी परमानन्द दास सूरदास की सी सहृदयता, स्वभाविकता तथा उच्च कवित्व शक्ति को नहीं पहुँच सके हैं ।

- नन्द दास

भक्तिकाल के कवियों में अर्थात विशेषरुप से अष्टछाप के अन्तर्गत इनका विशिष्ट स्थान है । भाषा और शब्द चयन की दृष्टि से अन्य कवियों से किसी भी प्रकार कम नहीं है । "नन्द दास जडिया और कवि गढिया" नामक उक्ति किसी ने वैसे ही नहीं बना दि है । यह उक्ति इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि भाषा को जितना चित्रमय इन्होंने बना दिया है उतना अष्टछाप के किसी कवि ने नहीं । "जडने और गढने में जो अन्तर है वही नन्द दास जी की सफलता का द्योतक है । सूरदास और नन्द दास दोनो ने ही भ्रमर गीत रचे है । नन्द दास जी के भ्रमर गीत में बुद्धि का चमत्कार, प्रसँगों की पुनरुक्ति तथा अद्‌भुत तार्किकता का ही प्राधान्य मिलेगा ।

-विद्यापति

भक्तिकाल के इन नामो मे ऐतिहासिक दृष्टि से सर्व प्रथम मैथिल कोकिल कवि विद्यापति का नाम आता है । इन्होंने जयदेव के ढंग पर मैथिली हिन्दी मे कृष्ण -राधा के प्रेम अथवा श्रृंगार विषयक अनेक सुमधुर पद लिखे हैं जो "पदावली" के नाम से संग्रहीत है । विद्यापति उच्च कोटी के भावुक एवँ रस सिद्ध कवि होने के साथ - साथ संगीत के आचार्य भी थे । भाषा पर भी इनका पूर्ण अधिकार था । इनके मुक्तक एवं गीति काव्यों

में इनके कवित्व के विशद दर्शन होते है । इन्होंने जिस भी रस का चित्रण किया है वह सजीव हो उठा है । भाव कोमल, मधुर एवँ चित्रमय है कि भाव चित्र नेत्रों के सम्मुख खड़ा हो जाता है । इसके अतिरिक्त संगीत का संयोग सोने मे सुहागा उत्पन्न कर देता है । वस्तुतः इनकी भाव - कोमलता के साथ पद मधुरता जयदेव के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं दीख पड़ती । इनके पद इतने मधुर होते थे कि श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हे सुनते - सुनते तन्मय दशा मे विभोर हो जाते थे और अपनी सुध-बुध खो देते थे । अतः गीतिकाव्य के इतिहास मे भी विद्यापति का स्थान अत्यन्त गौरवमय है ।

तुलसी दास

भक्तिकाल के सगुण शाखा के अन्तर्गत तुलसी का स्थान सर्वोपरि है । तुलसी ने अपने ईष्टदेव राम के जीवन की सम्पूर्ण झाँकी " राम चरित मानस " के माध्यम से प्रस्तुत की है । तुलसी काव्य में सभी रसों का सुन्दर एवँ स्वभाविक परिपाक दिखाइ देता है । तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का यशोगान किया है । उन्होंने दास्य भाव से भक्ति की है ।

" तू दयालु दीन हौ तू दानी हौं भिखारी "

दास्य मे बँधे तुलसी श्रृंगार वर्णन एवँ सख्य भाव की भक्ति स्वतन्त्र होकर कर कैसे सकते थे । तुलसी की स्वभाविकता, रमणीयता मर्यादित एवँ हृदय ग्राही है । तुलसी की सीता का प्रेम एक स्वभाविक बंधन है जिसका मात्र हृदय से संबंध रखना उद्देश्य नहीं बल्कि सामाजिक परिधि के अन्तर्गत भावनाएँ सीमट गई है । जीवन के सभी संबंधों का चित्रण तुलसी दास ने किया है । श्रृंगार की भावना एवँ माधुर्य भाव दोनों का समन्वय सीता और राम का प्रेम इन पंत्तियों से द्रष्टव्य है -

अधिक सनेह देइ भइ भोरी सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।

लोचन मग रामहि उर आनी, दीने पलक कपाट सयानी

जब सिया सखिन्ह प्रेम बस जानी कहि न सकहि कछु मन सकुचानी

-तुलसी दास की कवित्व शक्ति अपरिमित है । इन्होने प्रबन्ध काव्य, स्फुट काव्य, गीति काव्य सभी प्रकार के काव्य रचे । गय तत्व की दृष्टि से उनका जो महत्व है वह अपरिमित है -

मीरा

कृष्ण काव्य रचना करने वालों में एक ऐसी भक्तिन का नाम आता है जिसके स्मरण करते ही पीडा नेत्रों के सामने साकार होकर खड़ी हो जाती है । मीरा सूर की भाँति कृष्ण की अनन्य भक्त थी । उनकी आत्म समर्पण की भावना को देखकर कौन ऐसा प्राणी होगा जो उनके आगे नतमस्तक न होगा । भक्तों में निश्चय ही मीरा का स्थान बहुत ऊँचा है किन्तु कवि रुप में मीरा को बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता । उनके गीत यद्यपि मधुर, कोमल तथा भावयुक्त है किन्तु काव्य के कला पक्ष की दृष्टि से उनका अधिक महत्व नहीं है । उनकी पदों की तो मुख्य विशेषता है उनकी एकान्त भावमयता । जो कुछ भी कवित्व अथवा काव्य चमत्कार दिखाई देता है यह स्वभाविक रुप से अनायास ही आ गया है । संगीत की दृष्टि से इनके गीतों का बहुत महत्व है । कला पक्ष संबन्धि चमत्कार चाहे सूर के समान न हो किन्तु आन्तरिक सत्यानुभूति जो गीतिकाव्य का प्राण है वह अन्य कवियों से कम नहीं मिलेगी । अपने गीतों में सर्वत्र उनके व्यक्तित्व का स्फुरण दिखाई देता है । उन्होंने अपने गीतों में अपने ही अन्तर के अनुभूतिपूर्ण मार्मिक चित्र उतारे हैं । उनके पदो में उनके हृदय की तड़प है, विरह व्याकुलता है और स्त्री -सुलभ भावनाओं का मार्मिक चित्रण है ।

सूरदास के गीतों की लोकप्रियता

संगीत और सरस्वती का अनादि काल से ही गठबंधन रहा है। कहना अनुचित न होगा कि जब भावावेश में आदि मानव ने कोई बात कही होगी तो उसका माध्यम संगीत ही रहा होगा । हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी संगीत की योजना आदिकाल से ही मिलती है । सिंद्ध साहित्य,नाथ पंथी साहित्य और सन्त साहित्य सभा में संगीत का समावेश मिलता है । किन्तु हिन्दी में वास्तविक संगीत योजना कृष्ण साहित्य से ही प्रारम्भ होती है । कृष्ण साहित्य में भावों का आतिश्य ही नहीं वरन् उसमें औदात्त भी था । क्योंकी उनकी वर्णन सर्वत्र अपने आराध्य का गुण-गान करने के लिए फुटी थी ।

सूरदास जी की लोकप्रियता का मूल कारण आत्म-विभोरता, संगीतात्मकता तथा सहज स्वभाविक भावनाओं का चित्रण है । उन्होंने जयदेव और विद्यापति का अनुसरण तो अवश्य किया किन्तु उसमें भी अपनी मौलिकता को अक्षुण्य बनाये रखा । सूरदास एक प्रतिभाशाली कलाकार थे । कृष्ण के प्रति राधा का स्वकीया प्रेम सूरदास की अपनी प्रतिभा का द्योतक है । राधा और कृष्ण के अभिसार, मान, सुरति तथा नख-शिख वर्णनों में उन्होंने अभिधा का प्रयोग न करके व्यंजना का प्रयोग किया है । नख-शिख वर्णन में तो उन्होंने दृष्टिकूटों का प्रयोग कर दिया है । श्रृंगारिक प्रसंगों में ईश्वरत्व के उद्‌घाटन द्वारा उन्होंने अपने वर्णनों को लौकिकता की गंध नहीं लगने दी है । तात्पर्य यह है कि उन्होंने श्रृंगारिक वर्णनों में किसी न किसी प्रकार की अलौकिकता को बनाये रखा है जिससे उसमे जयदेव के गीतगोविन्द तथा विद्यापति की "पदावली" की भाँती अनर्गल प्रयोग के दर्शन नहीं हो पाते ।

अतः निष्कर्ष रुप से कहा जा सकता है कि सूर ने सूरसागर की रचना करके निश्चित रुपेण एक स्थायित्व को प्राप्त किया है ।

श्री कृष्ण और राधा के मिलन सुख और गोपियों के संयोग का वर्णन करने में सूरदास ने प्रायः ऐसे आध्यात्मिक संकेत प्रस्तुत किये है जिनसे उनकी पार्थिवता तथा ऐन्द्रियता, अलौकिकता तथा अतिन्द्रियता में परिवर्तित हो जाती है । राधा के रुप वर्णन के तो सूरदास ने कूट शैली का प्रयोग करके उसकी असाधारणता तथा विलक्षणता का संकेत दे दिया है -

"जब प्यारी मन ध्यान परयो है ।

पुलकित उर रोमांच प्रगट भयो

अंचर टरि मुख उघरि परयो है ।"

सूरसागर में सबसे अधिक रहस्यात्मक उक्तियाँ मुरली से संबन्धित है । मुरली के मधुर नाद का न आदि है न अंत । वह तो लोक - लोकान्तर व्यापी है । वह शब्द ब्रम्ह् का ही एक रुप है जो श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से लोक गीत रहस्य की अनुभुति का संकेत कराता है । श्री कृष्ण की वंशी की ध्वनि जब चराचर लोक के कानों में पड़ती है तो वह अपना संसारिक स्वभाव विस्तृत कर अनिर्वचनीय आनन्द स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं । मुरली का रहस्यात्मक प्रभाव इन पंक्तियों में है -

"बाँसुरी बजाय आछै रंग सौं मुरारी ।

सुनि कै धुनि छूटि गई शंकर की तारी ।"

"वेद पढ़त भूल गये ब्रम्हा ब्रम्ह चारी ।

रसना गुन कहि न सकै ऐसी सुधि विसारी ।"

मुरली की भनक कान में पड़ी नहीं कि गोपियाँ तन की सुधि भूल गई । उनका रुप यौवन का सारा गर्व भाग गया और वे लोक कुल की मर्यादा को त्याग कर कृष्ण की ओर दौड़ पड़ी । मुरली की ध्वनि जब उनके कान में पड़ती है तो घर में ठहरना असंभव हो जाता है -

"जबहि बन मुरली श्रवण परी,

चकत भई गोप कन्या सब काम धाम बिसारी ।"

कृष्ण का अधर पान करते देखती है तो ईर्ष्या की भावना से तिलमिला उठती है । वे इसे स्वाधीन पतिका के रुप में भी देखकर क्षुब्ध होती है । उन्हे ऐसा लगता है कि मानों इसने कृष्ण को सब प्रकार से अधीन कर रखा है । देखिये कितना सुन्दर वर्णन है -

"मुरली तऊ गोपालहिं भावति,

सुनरी सखी जदपि नन्द-नन्दहिं,

नाना भाँति नचावति ।"

इस समस्त विवरण के आधार पर स्पष्टतः कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य के इतिहास में सूर का स्थान ही सर्वोच्च हैं । काव्य की दृष्टि से कोई भी कवि उनकी समता नहीं कर सकता ।

परिच्छेद - ३

सूरदास के व्यक्तित्व एवँ कृतित्व का परिचय

हिन्दी साहित्य मे कृष्ण से संवंधित जितनी मात्रा मे रचा गया है उतनी मात्रा मे संभवत: और कोइ साहित्य नहीं रचा गया । हिन्दी साहित्य के चारो कालों में कृष्ण कम नायक बनाकर काव्य रचनाएँ हुइ है । कवि के रुप मे सूरदास का व्यक्तित्व सहज मर्म स्पर्शी एवँ स्वभाविक प्रतीत होता है । एक - एक शब्द काव्य के माध्यम से भावों को अभिव्यक्त करते है ।

अष्टछाप के आठों कवियों में ही नही, वल्कि ब्रजभाषा के समस्त कवियों में सर्वश्रेष्ठ महाकवि है सूरदास जी । हिन्दी में कृष्ण काव्य के आरम्भ करने का श्रेय मैथिल कोकिल कवि विद्यापति को है किन्तु उसका पूर्ण विकास सूरदास की कविता में ही दिखलायी देता है ।

सूरदास सर्व प्रथम भक्त कवि के रुप में प्रसिद्ध हैं । वे महाकवि तो थे ही किन्तु कवि होने से पूर्व वे भक्त थे । भक्त पहले थे कवि बाद में । इस संदर्भ के स्वयं सूरदास ने बताया है ।

" श्री गुरु बल्लभ तत्व सुनायो लीला भेद बतायो "

-अर्थात स्पष्ट है कि उनके गुरु बल्लभाचार्य जी थे वे पुष्टि मार्ग सिद्धान्तों मे विश्वास रखते थे । ईश्वर के अनुग्रह को ही पुष्टि कहते हैं । अनुग्रह की मात्रा के अनुसार पुष्टि चार प्रकार की होती है । प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्टि पुष्टि और शुद्ध पुष्टि । शुद्ध पुष्टि प्राप्त होने वाले भक्त पर भगवान का विशेष अनुग्रह होता है । इस

प्रकार का भक्त अपना सब-कुछ उस पर बलिदान कर देता है । गोपिंयाँ इसका ज्वलन्त उदाहरण है ।

श्री कृष्ण उपास्य देव है और श्री कृष्ण से तात्पर्य उसी परम ब्रह्म परमेश्वर, निर्गुण निराकार ईश्वर से है जो सृष्टि का उत्पादन, विनाश एवँ रक्षा करने वाला है । श्री आचार्य जी के अनुसार "कृष्णानुभवइ रुपहिं पुष्टि" अर्थात कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है । श्री कृष्ण जिस पर अनुग्रह करते हैं उसे ही उनकी भक्ति प्राप्त होती है । सर्व प्रथम सूरदास एक भक्त कवि होने के कारण कृष्ण की भक्ति दास्य भाव से की है । दास्य भाव की भक्ति का सुन्दर उदाहरण निम्न पंक्तियों मे हैं -

" रे मन कृष्ण नाम कहि लिजै

गुरु के वचन अटल कहि मानो

साधु समागम कीजै ।"

भगवान की भक्ति प्राप्त हो जाने पर भक्त को कोई भय नहीं रह जाता है । उन्होंने अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है कि भगवान अद्वैत और गुणातित है । फिर भी सगुण भक्ति की ओर उनका मन अधिक रमा हुआ प्रतित होता है । वो सदगुणोपासक कवि के रुप मे प्रतिष्ठित है । संग्रहीत योजना कृष्ण साहित्य से ही प्रारम्भ होति है । कृष्ण साहित्य मे भावों का आधिक्य ही नहीं अपितु उसमे औदार्य भी है । भक्त होने के कारण उसकी प्राप्ति की तीव्रता और अनुराग की तन्मयता प्रकट होती है । दैन्य भाव सूरदास के मानस का एक स्थायी भाव है, जो उनकी श्रद्धा, विनय शिलता, भक्ति भावना की तीव्रता तथा सहज श्रवण शीलता का परिचायक है । वे बार-बार भगवान से प्रार्थना करते है कि वे उसे अपनी शरण मे लेकर दास की भाँति रक्षा करें -

" जौं हम भले बुरे तो तेरे ।

तुम्हे हमारी लाज बड़ाई

विनती सुनि प्रभु मेरे ।"

सूरदास ने अनेक ऐसे पदों की रचना की है जिसमे उन्होंने अपनी लघुता की अतिरँजना करके करुणानिधि भगवान से कृपा की याचना की है ।

भारतीय ऋषि एवँ महात्मा प्राचीन काल से ही भक्त, परोपकारी, ज्ञानी एवँ वैरागी रहे हैं । उनके नाम को लोकप्रियता अथवा यश प्राप्त हो, इसकी चिन्ता उन्होंने कभी नहीं की । अत: कुछ रचना करते हुए भी वे अपना परिचय न दे सके । आत्म प्रदर्शन की भावना से वे कोसों दूर थे । वास्तव मे वे तो प्रत्यक्ष से नहीं परोक्ष से प्रेम करते थे । वे अपने आराध्य देव की गाथा गाते - गाते उनके प्रेममे इतने निमग्न हो जाते थे कि उन्हें अपने विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझते थे । फलत: इनके जीवन वृत्त के विषय में प्रामाणिक रुप मे कुछ भी कहना बड़ा कठिन हो जाता है । ठीक यही बात सूरदास के जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे चरितार्थ होती है ।

किसी भी कवि की जीवनी के सम्बन्ध मे जानने के लिए मुख्य रुप से दो साधन प्रयोग मे लाये जाते है ।

(१) अन्त: साक्ष्य

(२) बाह्य साक्ष्य

अन्त: साक्ष्य से तात्पर्य उस सामग्री से है जो स्वयँ कवि द्वारा अपनी रचनाओं मे परोक्ष वा प्रत्यक्ष रुप में कही गई है । बाह्य साक्ष के अन्तर्गत उस कवि के समय के तथा कुछ बाद के लेखकों के कथन आते हैं जो उन्होंने उस कवि के विषय मे कहे हैं ।

कभी - कभी कुछ सामग्री विश्वस्त जनश्रुतियों से भी प्राप्त हो जाती है । इन्हीं साधनो का आधार लेकर सूरदास के जीवन बृत्त पर प्रामाणिक रुप से प्रकाश डाला गया है ।

भक्तिकाल के अन्य कवियों की तरह सूरदास के जन्म एवँ मृत्यू के सम्बन्ध में निश्चित रुप से कुछ कहा नहीं जा सकता है । किन्तु हाँ "सूरसारावली" और "साहित्य लहरी" के एक - एक पद के आधार पर विद्धानों ने इनके जन्म की भिन्न - भिन्न तिथियाँ निश्चित की है । वे दोनो पद इस प्रकार है -

"गुरु परसाद होत यह दरहन सरसठ वरस प्रवीन

शिव विधान तप कियो बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन"

- -सूरसारावली

"मुनि पुनि रसन के रस लेख,

दसन गौरी नन्द को लिखि सुजन संवल पेख ।

नन्द - नन्दन मास है ते हीन तृतीय बार,

नन्द - नन्दन जनमते हैं बान सुख आगार ।

तृतीय ऋज्ञ सुकर्म जोग बिचारि सूर नवीन,

नन्द - नन्दनदास हित साहित्य लहरी कीन । "

- -साहित्य लहरी

सूरसारावली के पद के आधार पर विद्धानों का कथन है कि सूरसारावली की रचना के समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की थी परन्तु इस पद के रसन शब्द पर बड़ा वाद-विवाद हुआ है । कोई रसन का अर्थ रस से हीन अर्थात शून्य कहकर इस ग्रन्थ का

निर्माण काल सं. १६०७ निश्चित करते है । कोई रसना अर्थात जिह्वा कह कर, एक संख्या वाची मानकर इसकी रचना काल सं. १६१७ ठहराते हैं । नलिनी मोहन सान्याल का मत इस विषय मे दर्शनीय है । चैतन्य महाप्रभु का जन्म सम्वत् १५४२ मे हुआ था । कुछ प्रमाण के आधार पर सूरदास का जन्म चैतन्य महाप्रभु के जन्म के १ वर्ष पहले माना जाता है । इस प्रकार सूरदास का जन्म १५४०-४१ के निकट ही ठहरता है ।

बहिर्साक्ष्य के आधार पर पुष्टि सम्प्रदाय में सूरदास बल्लभाचार्य से दस दिन छोटे माने जाते हैं । श्री गोकुल नाथ जी की "निजवार्ता" की इस पंक्ति -"सो श्री आचार्य जी सों दिन दस छोटे हुते" सबसे अधिक प्रचीन प्रमाण है । इस समस्त विवरण के आधार पर सूरदास का जन्म १५४० या उसी दसक के समय मे मानना उचित होगा ।

"चौरासी वैष्णवन की वार्ता" के अनुसार जो सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है सूरदास जी का जन्म सीही नामक ग्राम में हुवा था । "सूर निर्णन" के रचयिता श्री परीख और मीत्तल ने प्रवल शब्दों में इस पक्ष का सर्मथन किया है । वंश परिचय के संबन्ध में "साहित्य लहरी" का यह पद द्रष्टव्य है -

प्रथम ही प्रथु जगाते मे प्रकट अदभुत रुप ।

ब्रह्मराव विचारि ब्रहमा राखु नाम अनुप ।

—सुरदास जी को श्री मिश्रबंधु तथा नलिनी मोहन साम्याल चन्द्रवरदाई का वंशज मानते है । सर जर्ज ग्रियर्सन, एनसाइक्लोपीडिया, मुंशी देवी प्रसाद पंडित, राम चन्द्र शुक्ल आदि विद्वान भी चन्द्रवरदाई का ही वंशज मानते है ।

यस निश्चित है कि सूरदास जाति से ब्राहमण थे । सूरदास के संबन्ध मे एक प्रश्न विवादास्पद है कि वे जन्म से अन्धे थे अथवा बाद मे अन्धे हुए । सूरसागर के विनय के पदों मे इनके अन्धे होने के यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होते है । यथा-

सूर कामी कुटिल सरन आयो

X X X X

सूर कूर आँधरो मै द्वार परयौ गाँऊ

कटौ न फंद मो अंध के, अब विलंव कारन कवन

X X X X

सूरदास अंध अपराधी सो काहे विसरायो ।

X X X X

ऐसो अंध अधम अविवेकी, खोटनि खरत खरे ।

श्री मिश्रबंधु ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "नवरत्न" मे विल्व मंगल के जीवन की घटना जिसमे वेश्या के प्रति उत्कट वैराग्य भावना हो जाने के कारण सूरदास को अपनी आँखें फोड़ लेनी पडी थी, इन्ही सूरदास के जीवन से संबन्धित वताई है । किन्तु इस तथ्य में विश्वास की संभावना नहीं है । क्योकि विल्व मंगल सूरदास बनारस के पास स्थित कृष्णवेना के निवासी थे । डा. धिरेन्द्र वर्मा ने "अष्टछाप" नामक ग्रन्थ मे चौरासी वैष्णवों की वार्ता के आधार पर सूरदास जन्मान्ध नहीं थे । इसी प्रकार अन्य विद्वानों का भी कहना है कि उनके काव्य में रँगों, हाव-भावों, जीवन तथा शरीर के सूक्ष्म व्यापारों, प्रकृति के विविध किया–कलापों के जो सजीव वर्णन प्राप्त है,स्पष्टतः इन तथ्य के परिचायक है कि ऐसी रचना जन्म से अन्धा कवि नहीं कर सकता । सूरदास पहुँचे हुए महात्मा थे । भगवान के ऐसे सच्चे भक्त पृथ्वी पर कम ही मिलेंगे । ऐसे भक्तों से भगवान भी बडा प्रेम करतें है और भगवान की शक्ति से कुछ भी परे नहीं होता । स्वयं

सूरदास ने अपने एक पद मे लिखा है कि उनकी कृपा से तो अघटित घटना भी घटित हो सकती है -

चरण कमल बंदौ हरि राई

मूक करोति वाचानं ।

"भक्त विनोद" मे इन्हे जन्मान्ध कहा गया है -

जन्म अन्ध दृग ज्योति विहीना

X X X X

बाहर नैन विहीन सो भीतर नैन विसाल

जिन्हें न जग कछु देखिवौ लखि हरि रुप निहाल

जन्महिते है नैन विहीना

- राम रसिका वली

उपर्युक्त समस्त विवरण के आधार पर यह नही कहा जा सकता कि सूरदास जन्मान्ध थे अथवा बाद मे अन्धे हुए । अंत में नन्द दुलारे वाजपेयी के शब्दों में इनके जन्मान्धता के विरोध मे ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह कहा जा सके कि वे जन्मान्ध न थे । केवल उनके काव्य के वर्णित विषयों और वस्तुओं के आधार पर जन्मान्ध नहीं माना जाता जो विशुद्ध अनुमान है और प्रमाणों से अपुष्ट है ।

कृतित्व (रचनाएँ)

हिन्दी साहित्य मे नागरी प्रचारिणी सभा को अधिक महत्वपूर्ण और विश्वस्त माना गया है । इस आधार पर सूरदास द्वारा रचित १६ रचनाएँ वताई जाती है -

(१) सूरसागर

(२) सूरसारावली

(३) साहित्य लहरी

(४) गोवर्धन लिला

(५) दशम स्कन्ध टीका

(६) नाग लीला

(७) पद संग्रह

(८) प्राण प्यारी

(९) व्याहलो

(१०) भागवत भाषा

(११) सूर पचीसी

(१२) स्फुट पद

(१३) सूर सागर सार

(१४) एकादशी महात्म्य

(१५) राम जन्म

(१६) नल दमयन्ती ।

सूरसागर

सूरसागर सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है । इसी एक रचना के कारण सूरदास हिन्दी साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किये हैं । "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" के अनुसार जिस समय सूरदास गऊ घाट पर सन्यासी वेश मे रहते थे उस समय भी पद रचना करते थे । सूरसागर के आदि के विनय संबन्धि पद इसी समय रचे गये होंगे ।

पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने तथा कृष्ण की लीला से परिचित होने के पश्चात सूरदास ने भी श्री मद्भागवत के अनुसार कृष्ण लीला संबन्धी पदों की रचना की । "वार्ता" के अनुसार इन्होंने सहस्त्रों पद रचे जो सागर कहलाये ।

सूरसागर मे एक क्रमबद्ध प्रबन्ध कल्पना है । कल्पना मे सुगठन और संहिति का समन्वय है । अनेक प्रसंग अत्यन्त सुगठित और अप्रतिहत लघु प्रबंधों के रुप ने मिल्न्ते है । इसमे श्री कृष्ण की ब्रज लीला की रुप रेखाओं को सन्दर रुप मे चित्रित मिलता है । सूरसागर मे सूर ने अनेक नवीन प्रसंगों की उद्भावना की है । इन्होंने भागवत का आधार लिया है परन्तु इसमें सूर की निजी मौलिक उद्भावना भी है ।

सूरदास ने श्री कृष्ण की वाल्यावस्था का जो अत्यन्त सरस और हृदयग्राही वर्णन किया है, वह अन्यन्त्र दुर्लभ है -

यशोदा हरि पालने झुलावे

मेरे लाल को आऊ निदरिया

काहे न आनि सुवावै ।

X X X X

खींमत जात माखन खात

X X X X

आज मै गाइ चरावन जैहो

वृन्दावन के नाना फल अपने

कर तें खैहो ।

X X X X

शोभित कर नवनीत लिए

सूरसागर को सभी विद्धान सूर की प्रामाणिक रचना मानते है । इसके रुप, पद,क्रम और पद संख्या आदि के विषय में चाहे विद्धानों मे मतभेद हो, किन्तु इसकी प्रामाणिकता के विषय मे कोइ मतभेद नहीं है, यह सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है । कवि के कवित्व और भक्ति की महत्ता का एक मात्र आधार कहा जा सकता है ।

"भ्रमरगीत" सूरसागर का मुकुटमणि हे । यह एक उपालंभ काव्य है । श्रृंगार रस का ऐसा उपालंभ काव्य अन्यत्र नही मिलता । यहाँ वियोग श्रृंगार का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है । गोपिकायों की विरहावस्था की प्रत्येक चल और अचल भावनाओं का चित्रण इसमे चित्रित मिलता है । एक ओर जहाँ संयोग पक्ष मे सूरदास की कला जमुना के किनारे चाँदनी रातों की शुभ्र छाया मे बाँसुरी की लय पर मुग्ध होने वाली गोपियों की रास लीलाओं का सृजन करती है वहीं दुसरी ओर कृष्ण के वियोग मे विहवल गोपियों की मार्मिक वेदना का ऐसा चित्र उपस्थित करती है जिसे देखकर संवेदना के

आँसु अनायास छलक पडते हैं । श्री कृष्ण के प्रति ब्रज बनिताओं का जो अनन्त प्रेम था उसकी चरम पराकाष्ठा वियोगजन्य अवस्था मे परिलक्षित है ।

वस्तुतः भ्रमरगीत एक ऐसी रचना है जिससे किसी भी भाषा को स्थायित्व मिल सकता है और उसे उस पर नाज हो सकता है । इसमे प्राणी की एक चिरन्तन हाहाकार है जो गोपियों की आह बनकर प्रकट हुआ है । तिलतिलकर जलने वाले हृदय का विकल उच्छवास है जो ब्रज बनिताओं की वेदना के व्यक्त हुआ है । विरह संतप्त प्राणों की आकुल विवशता इसके गीतों की झँकार है । वास्पाकुल कंठो की करुण ध्वनि इसके पदों का स्वर संधान है । इसमे निराशाओं की कसक है, अभिलाषाओं का उत्पीडन है और यौवन की भावनाओं की चिर समाधि है ।

भ्रमरगीत का उद्देश्य हृदय की रागात्मक वृत्ति पर आधारित भक्ति को मस्तिष्क जन्य ज्ञान एवँ निवृति जन्य योग से श्रेष्ठ और श्रेयस्कर बताया है । उद्धव की निर्गुण ज्ञान चर्चा गोपियों की उपालंभ भरे विरह निवेदन के सन्मुख टिक नहीं सकती । उनके हृदय की मार्मिक वेदना के करुण प्रवाह मे उद्धव का ज्ञान जैसे वह जाता है । गोपियों की इस मर्मस्पर्शी वेदना को लक्ष्य कर ही तो कहा जाता है -

"Bhramar geeta is a wild and wonderring cry of wasted youth."

श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद बृंदावन बासियों पर विपत्ति का समुह उमड पडा था । समस्त वृन्दावन उनकी स्मृति को अपने मानस पटल पर अंकित कर उस मधुदिन को याद कर के अपनी हाल पर आठ-आठ आँसू वहा रहे थे । अतः इन्होंने अपने प्रिय सखा उद्धव को ग्वाल वालाओं को सांत्वना प्रदान करने के लिए भेजा । उद्धव निर्गुण उपासना का पक्षपाती और सगुण उपासना के विरोधी थे । उन्हे ज्ञान का बड़ा अभिमान था । अतः प्रेम भक्ति का महत्व प्रत्यक्ष दिखाकर उद्धव का अभिमान दुर करने

के लिए ही श्री कृष्ण ने उन्हे बृन्दावन भेजा और गोपियों को ज्ञान का उपदेश देकर अपनी ओर से विरक्त करने का आदेश दिया था । उद्धव महराज अपनी निर्गुण ज्ञान गरिमा की गठरी बाँधकर ब्रज पहुँच और लगे गोपियों को ज्ञानोपदेश देने । किन्तु गोपियों ने उद्धव की ज्ञान विषयक उक्तियों का खंडन करके प्रेम भक्ति की ऐसी उत्तम रीति से प्रतिपादित किया कि उद्धव का ज्ञान सागर बिल्कुल सूख गया और अन्त में उनका भक्ति का महत्व स्वीकार कर मथुरा लौटे । उन्होंने तब कहा -

"आशामहो चरपरे जु जुषामहम् स्याम

वृन्दावने किमपिगुल्मलतौषधीनाम्

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपंच हित्वा

भेजुर्मुकुन्द पदवी श्रुतिभिर्विमुग्याम"

उद्धव गोपियों को योग मार्ग का अवलम्बन करके निर्गुण और निष्काम भाव से श्री कृष्ण की उपासना करने का उपदेश देते है । परन्तु उन बेचारी अवलाओं के खिन्न हृदय मे वे बातें घाव पर नमक का काम करती है । वे कहती है -

अँखिया हरि दर्शन की भूखी

कैसे रहे रुप रस राँची ये बतियाँ सुनि रुखी

X X X X

निर्गुण कौन देश को वासी ?

मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै

बुझति साँच न हाँसि ।

X X X X

कान्ह भये प्राण मय प्राण भये कान्हमय

यह मै नही जानती प्राण है कि कान्ह है ।

X X X X

उधो हमहि न जोग सिखैये ।

जेहि उपदेश मिले हरि हमको सो ब्रत नियम वतै ये ।

भ्रमरगीत का भाव पक्ष बहुत प्रवल और सजीव है । समस्त काव्य जैसे मानव हृदय की उद्वेलित भाव तरंगो का एक प्रखर प्रवाह है जिसमें वेदना और करुणा की लहरें एक पर एक टकराती हुई आती रहती है । वस्तु वर्णन में सूरदास ने ऐसे सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचय दिया है जिसमें सम्पूर्ण भ्रमरगीत चमत्कृत हो उठा है । कल्पना और भावुकता का मणिकांचन संयोग साहित्य मे विरले ही मिलेंगे ।

सूरसारावली

सूरसारावली की कोई भी हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं हुई है । ईसकी रचना का उल्लेख चौरासी वैष्णवों की वार्ता मे दिखाइ देता है और न "भाव प्रकाश"में श्री हरि राय जी ने इसका कोई संकेत दिया है । बैंकटेश्वर प्रेस से जो सूरसागर का जो संस्करण निकला था उसके साथ ही यह रचना संलग्न मिलती है किन्तु यह किस हस्त लिखित प्रति के आधार पर छापी गई है उसके संबन्ध मे निश्चित रुप से कुछ कहा नही जा सकता । इसमे और सूरसागर मे अनेक विवरणगत विभिन्नताएँ विद्यमान है । इसके अतिरिक्त इसकी भाषा शैली और विचार धारा मे भी सूरसागर से पर्याप्त भिन्नता है । काव्य के दृष्टि से भी यह रचना विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती है । परन्तु पुष्टि

मार्गीय सिद्धान्तों की पुष्टि होने के कारण इसे साम्प्रदायिक विद्धानों ने प्रामाणिक माना है । विषय की दृष्टि से इसमे कृष्ण की संयोग लीला, वसन्त हिंडोला और होली आदि के प्रसंग कृष्ण के कुरुक्षेत्र से लौटने के बाद के समय के लिखे गये है । सूरसागर की तरह इसमे कुछ पद गेय है शेष सारी रचना "सार" "सरसी" दो छन्दों मे हुई है ।

साहित्य लहरी

"साहित्य लहरी" सूरदास का तीसरा प्रमुख ग्रंथ बताया जाता है । इसका विषय "सूरसागर" से कुछ भिन्न दिखाइ देता है । इसके विषय मे कोई भी तार तम्य दृष्टिगत नहीं होता । इसमे कृष्ण की वाल लीला से संबन्धित पद भी है और नायिका भेद के रुप मे राधा के मान आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है । इसमे संयोगिनी, विलास वती स्त्री का भी वर्णन है और वियोगिनी प्रोषित पतिका का भी । स्वकीया, परकीया, मुग्धा, प्रौढा, धीरा, ज्येष्ठा, विदग्धा आदि सभी प्रकार की नायिकाओं का वर्णन इसमे मिलता है । इसके अतिरिक्त दृष्टान्त, परिकर, निदर्शना, समासोक्ति, व्यतिरेक आदि अलंकारों का भी उल्लेख दिखाइ देता है ।

इस ग्रन्थ के पद दृष्टकूट कहलाते है । इन दृष्तकूटों मे यमक, श्लेष, रुपकातिश्योक्ति आदि अलंकारो के प्रयोग के कारण अर्थबोध कि कठिनाइ आ गई है - इस प्रकार का यमक अलंकार का उदाहरण दृष्टव्य है-

"सारंग समकर नीक-नीक सम सारंग सरसा बखाने,

सारंग बस भय,भय बस सारंग विष मै मानै । "

इस प्रकार साहित्य लहरी में नायिका भेद तथा अलंकार निर्देश ही मुख्य रुप से है । मुख्य बातों को दृष्टकूटों के रुप मे भी वर्णन किया गया है ।

सूरदास के दृष्टिकूट अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर बन पडें है और संख्या की दृष्टि से भी पर्याप्त कहे जा सकते है । सूरदास के पदों में इतिहास और पुराणो से संबद्ध कथायें और जनसाधारण में प्रचलित कथायें -दोनो से संबन्धित शब्द मिलते है । इस प्रकार के दृष्टिकूटों मे शब्द को इस रुप से रखा जाता है कि अर्थ और अनुमान लगाते - लगाते मूल अर्थ की सिद्धि हो जाती है ।

"कंचन पुर पति को जो भ्राता तासु प्रिया नहिं कहावै ।"

-कंचन पुर का अर्थ सोने की नगरी अर्थात लंका मे कुम्भकरण को नींद नहीं आती ।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

अदभुत एक अनुपम बाग,

जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त

तापर सिंह करत अनुराग ।

X X X X

राधे माने मनायौ मेरौ ।

रवि सारथी सहोदर को पति मारग देखत तेरौ

मारुत-सुत पति अरि-पति रिपुदल दियौ आन तह घेरौ ।

X X X X

सारंग- सुत- पति तनया के तट ठाढे नन्द कुमार

बहुत तपत जा रासि मे सविता ता तनया संग करत विहार

दृष्टिकूट रचना कोइ साधारण कार्य नही है । इसके लिए कवि को विविध विषय जैसे इतिहास, पुराण तथा प्रचलित लोक कथाओं का ज्ञान अपेक्षितं है । शब्द भंडार भी प्रचुर परिमाण मे सूरदास के पदों मे भरे-पड़े हैं । अतः कहा जा सकता है कि सूरदास महाकवि थे । उन्हे दृष्टिकूट रचना मे अपूर्व सफलता प्राप्त हुइ है । सूर का भाषा पर असाधारण अधिकार था । उनके दृष्टिकूट हिन्दी साहित्य मे अनुपमेय है ।

भक्तिकाल के कवि सूरदास की कविताओं का विश्लेषण -

भक्तिकाल के कवियों की सर्वाधिक विशेषता रही है कि उनकी भक्ति भावना । भक्तराज सूरदास भगवान श्री कृष्ण के परम भक्त हैं । उन्होंने "दास्य, सख्य, वात्सल्य" और माधुर्य भाव से श्री कृष्ण की भक्ति की है । प्रारम्भ मे वे दास्य भाव से ही भक्ति करते थे, इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है -

"चरण कमल वन्दौं हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लघे

अन्धे को सबकुछ दरसाई ।"

पदों मे सगीतात्मकता के साथ-साथ समर्पण की भावना है । जयदेव और विद्यापति की भाँति इनके संगीत में संगीत और काव्य का मणिकांचन संयोग है । अपने पदों में श्रृंगारिकता को ही प्रधानता दी है । सूरदास की एक अद्वितीय विशेषता है कि

उन्होंने जयदेव और विद्यापति का अनुसरण तो अवश्य किया परन्तु उसमे भी अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण बनाये रखा ।

सूरदास एक प्रतिभाशाली कलाकार थे । श्री कृष्ण का चित्रण माधुर्य भाव से भी कया है । गोपियों और कृष्ण के पारस्परिक स्नेह के वर्णन मे माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति ही चरम पराकाष्ठा पर है । राधा कृष्ण की पत्नी है । वे अन्य गोपियों से कृष्ण के लिए कुछ ज्यादा ही महत्वपूर्ण है ।मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सूर की यह माधुर्य भाव की उपासना पद्धती अत्यन्त उपयुक्त है । प्रेम ऐसा भाव है जो न्यून अथवा अधिक मात्रा मे सभी मे पाया जाता है । इसी लौकिक प्रेम का स्थानान्तरण यदि अलौकिक के लिए हो जाता तो भक्त की अपनी भक्ति मे कुछ अधिक सफलता प्राप्त हो जाती है ।

भक्ति में सूरदास की अधिक निकटता आने से उनकी भक्त में सख्य भाव की प्रधानता आ गई है । कृष्ण अपनी सखाओं के साथ गो चारण के लिए जाते हैं, खेलते हैं, अनेक प्रकार की लीलाये करते हैं । खेल में उनके सखा उनकी महानता को नहीं मानते । जब कृष्ण पराजित हो जाते हैं तो सखा स्पष्ट रुप मे कहते हैं कि खेल मे कोई किसी का स्वामी नहीं है सब बराबर है । कृष्ण से वे स्पष्ट कह देते हैं कि यदि उनके पास कुछ अधिक गौए है तो वे उनका इसी आधार पर कोई विशेष अधिकार नहीं मान सकते -

खेलन में को काको गुसैंया ?

X X X X

अति अधिकार जनावत याते अधिक तुम्हारे

है कछु गैया ।

इससे भी अधिक सामीप्य लाभ तो सूरदास ने वहाँ दिखाया है जहाँ वे उनकी विविध श्रृंगारमयी कीडाओं का वर्णन करते है । वे सखा रुप में उनकी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सभी बातों को देख लेते हैं क्यों कि सखा भाव कि भक्ति के नाते अपना अधिकार समझते है ।

ग्वालन करतें और छुडावत

जूठो लेत सबन के मुख को अपने मुख लै नावत

उपरोक्त पद अति सुन्दर है जिसमे वे गाय चराते समय सखाओं के साथ बेठकर छाछ खाते हैं । सूरदास ने कृष्ण को जिस रुप मे चित्रित किया है वह महाभारत अथवा भागवत मे वर्णित कृष्ण के रुप से भिन्न है । दोनों के अवतार लेने के उद्देश्य मे भी अन्तर है । महाभारत के कृष्ण तो साधुओं के परित्राण तथा दुष्टों के दलन हेतु अवतार लिया था परन्तु सूरदास के कृष्ण भक्तों को आनन्द देने के लिए अवतरित हुए हैं । और इसी हेतु अनेक प्रकार की लीलायें करते है । उन लीलाओं के अन्तर्गत माधुर्य भाव की ही व्यंजना होती है ।

वात्सल्य का क्षेत्रका जितना अधिक उदघाटना सूरदास ने अपनी बन्द आँखों से किया है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं । चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार सूरदास को जब श्री बल्लभाचार्य जी दीक्षित किया था तो उन्होंने श्री कृष्ण की बाल लीला पर ही सूर का ध्यान अधिक आकृष्ट कराया था । श्री मद्भागवत में भी जिसका आधार सूर ने सूर सागर की रचना में किया है, श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रण प्राप्त होता है । वात्सल्य भक्ति के चित्रण में सूर ने अनेक मौलिक उद्भावनाओं को जन्म दिया है । इस प्रकार की भावना का कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

यशोदा हरि पालने म्हुलावै

हलरावै दुलरावै जोइ सोइ कुछ गावै,

X X X X

मैया मै न चरैहों गाई

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसो

मेरे पायँ पिराई ।

X X X X

मैया मोरी मै नही माखन खायो

ख्याल परे ये सखा सबै मिली

मेरे मुख लपटायो ।

इस प्रकार वात्सल्य का वर्णन सूरदास ने जिस रुप में किया है वह निस्सन्देह एक अद्‌भुत प्रतिभा का परिचायक है । सूरदास की भक्ति केवल उसी समय के ही नहीं, अपने सम्प्रदाय के ही नहीं वरन सर्व काल के और प्रायः समस्त सम्प्रदाय के लिए महत्व रखता है । रागात्मिक दृष्टि से सूर का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । एक ओर माखन चोरी का विनोद पूर्ण एवं स्वाभाविक दृश्य है तो दुसरी ओर विरह विदग्ध गोपिकाओं का तार्किक शक्ति का संयोग कितना मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही है ।

भ्रमरगीत सूरसागर का मुकुटमणी है । भ्रमरगीत की लोकप्रियता भी सूरदास के कारण अधिक हुई है । इन्होंने श्री मद्‌भागवत की कथा से अपने भ्रमरगीत मे परिवर्तन कर दिया है । उद्धव निर्गुण ब्रह्‌म के उपासक थे अतः गोपियों के कृष्ण मोह को दूर

करने के लिए ज्ञान की बातें करते हैं । गोपियाँ उनकी बातों का उत्तर सरल एवं स्वाभाविक रुप में देती है -

ऊधो मन नाहि दस बीस

एक हुतो सो गयो स्याम सँग

को आराधै ईस ।

X X X X

उर में माखन चोर गड़े

अब कैसहुँ निकरत नाहीं ऊधो

तिरछै ह्वै जु अड़े ।

गोपियाँ उद्धव के निराकार ब्रम्ह को भजने की असमर्थता प्रकट करती है एवं दुसरी ओर ज्ञान मार्ग का उपहास करती है । क्यों की वे अनन्य भाव से सगुण कृष्ण की उपासिका है । वे उन्हें स्पष्ट कहती है -

तौं हम माने बात तिहारी

अपनो ब्रम्ह दिखावौ ऊधो मुकुट पीताम्वर धारी

सूरदास की गोपियों के लिए निराकार भगवान की उपासना नितान्त व्यर्थ है । सूरदास के भ्रमरगीत के ऐसे कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है जिनमे गोपियाँ निर्गुण भक्ति के प्रति अपनी असमर्थता प्रकट करती है -

सूरदास या निर्गुण सिन्धुहि कौन सके अवगाहि

X X X X

कौन काज या निर्गुण सों चिरजिवहु कान्ह हमारे ।

-सूरदास ने अपने उद्देश्य की पूर्ति बड़े काव्यात्मक ढंग से किया है । श्री कृष्ण को गोपियों की भक्ति पर अटूट विश्वास है । अतः वे निर्गुण मार्गी उद्धव के अहंकार का निवारण कराने हेतु उद्धव को ज्ञान संदेश देने गोपियों के पास भेज देते हैं । गोपियों की भक्ति ऊधो पर जादू जैसा प्रभाव डालती है । उनका ज्ञान गर्व काफूर हो जाता है । अर्थात दूसरे शब्दों मे भक्ति के आगे ज्ञान परास्त हो जाता है । वास्तव में सूरदास के भ्रमरगीत में विविधता और विस्तार तो है ही साथ ही उसमे स्वाभाविकता और गहनता भी लक्षित होती है । विरह के अनेक ऐसे स्थलों पर ऐसी उक्तियाँ है जो हृदयस्पर्शी है ।

सूर का भक्ति पथ अधिक मनोरम तथा मनोवैज्ञानिक है । उनकी भक्ति में अनुभूति की प्रधानता है । वे प्रम में ही तल्लीन होकर रहना चाहते है । उनकी दृष्टि में प्रेम से ही लौकिक और अलौकिक सुखों की प्राप्ति संभव है । अतः अन्य जितनी मनोवृत्तियाँ है वे निष्प्रयोजन प्रतीत होती है ।

भाव पक्षः

अभिव्यक्ति तो वास्तव में अखंड वस्तु है । किसी भी कवि की भाषा का अध्ययन भावो के साथ होता है । सूरदास महाकवि थे और महान हृदय पारखी थे । अतः भावना के स्तर पर भाषा के कई रुपों का प्रयोग करने में समर्थ हुए हैं -

"काहे को गोपी नाथ कहावत ?

जो पै मधुकर कहत हमारे

गोकुल काहे न आवत ।"

सूक्ष्म मानसिकता स्थितियों के अनुरुप भाव के साथ भाषा का चित्रण शब्दों की पुनरावृत्ति तथा सम्वोधनात्मक "रे" द्वारा भ्रमर को उड़ाने का कवित्वपूर्ण विधान दर्शनीय है -

"जा जा रे भौरा ! दूर दूर,

रंग रुप और एकहि सूरति

मेरो मन कियो चूर-चूर"

कहाँ तक उदाहरण दिए जाँय । सूरसागर मे सूक्ष्म मानसिक स्थितियों के तदनुरुप भाव पक्ष के उदाहरण भरे पड़े है । किन्तु भिन्न - भिन्न भावनाएँ होते हुए भी उसमें एकरुपता विद्यमान है जिसका एक मात्र कारण है सभी मानसिक स्थितियों सूत्रवत पिरोई गई "प्रिय विषयक रति"। सूरदास की भाषा का चमत्कार तभी समझ में आ सकता है जबकी स्थायी भाव को पुष्ट करने वाली अनेक भावों की तरंगों को स्पष्टतः अलग-अलग पहचान लिया जाय ।

सूरदास भाव जगत के सुन्दर चितेरे हैं । दशम् स्कन्ध पूर्वाद्ध के वाल वर्णन को देखिये पंडित राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार सूरदास ने अपनी बन्द आँखों से वाल जीवन का कोना - कोना झाँक लिया है । वालकों की प्रत्येक मनोहारी छवि का चित्रण इतना हृदयग्राही है जिसे अनुभव कर सूरदास का अद्भुत एवं पूर्ण ज्ञान का परिचय मिलता है

। श्री कृष्ण का रुप वर्णन, गोचारण, माखन चोरी, स्पर्धा की भावना, बाल सुलभ चेष्टाएँ, कृष्ण और राधा का स्वाभाविक प्रणय इतने स्वाभाविक सरस एवं मर्म स्पर्शी है -

"यशोदा हरि पालने म्हुलावै

हलरावै दुलराइ मलहावै,

जोइ सोइ कुछ गाव ।"

वैसे ही वियोग पक्ष मे भ्रमरगीत प्रसंग मे सुरदास के पदों मे अनुभुति की गहराई कितनी है -

"उर में माखन चोर गडे

अब कैसहुँ निकरत नाहीं ऊधो

तिरछै ह्वै जु अड़े ।"

X X X X

ऊधो मन नाहि दस बीस

एक हुतो सो गयो स्याम सँग

को आराधै ईस ।

इस प्रकार सूरदास के पदों में अनुभुति की गहराई चित्रात्मक तथा अपूर्व हृदय स्पर्शिता पर्याप्त मात्रा में है । उनके काव्य का भाव पक्ष सरस सरल एवं स्वाभाविक है ।

कलापक्ष

सूरदास श्रेष्ठ कलाकार है । उन्होंने सूरुसागर में भाव धाराएँ तो वहाई ही है साथ ही उनमे माणिक्य और मुक्ताओं की प्रचुरता भी है । उनकी भाषा शुद्ध एवं साहित्यिक ब्रज भाषा है और शब्द शक्ति बडी ही गौरव शालिनी है । लक्षणा एवं व्यंजना की भरमार ने भाषा को अत्यन्त सशक्त एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है । कोमल कान्त पदावली सूरदास की भाषा की सबसे बडी विशेषता है । साथ ही सानुप्रास, स्वभाविक, प्रवाहमयी, सजीव एवं भावों के अनुरुप है । भावों को अभिव्यक्त करने के लिए शब्द सोचना नहीं पडता । वे भावानुकुल स्वत: ही प्रवाहित हो जाते है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

ब्रज के लोग उठे अकुलाई ।

ज्वाला देखि अकास बराबरि

दसहुँ दिसा कहुँ पार न पाई ।

X X X X

“अब मै नाच्यो बहुत गोपाल

काम क्रोध को पहरि चोलना

कंठ विषय की माल ।”

X X X X

"सखि इन नैनन ते घन हारे ।

विन ही ऋृतु बरसत निसि वासर

सदा मलिन दोउः तारे ।"

उपर्युक्त समस्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि सूरदास के पदों में भाव पक्ष के बुद्धि तत्व, कल्पना तत्व, रागात्मक तत्व, तथा कला पक्ष के दृष्टि से भाषा के काव्य शास्त्रीय रस निरुपण, ध्वनि, अलंकार गुण आदि स्पष्टतः दृष्टिगत होते है । अतः निसंन्देह सूरदास के पदों में भाव तथा कला पक्ष दोनो ही चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हुए है ।

सूरदास की कल्पना शक्ति और अलंकार विधान उनके सरस हृदय, ममृज्ञता और सौन्दर्य विनम्रता के स्पष्ट प्रमाण है उन्होंने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति द्वारा ऐसे भाव चित्र उपस्थित किये हैं जो साहित्य जगत मे सदैव अमर रहेंगे । सूरदास के नेत्रों के सामने कृष्ण का पीताम्वर और राधा का नीली साड़ी तो हर समय रहती है । राधा और कृष्ण दोनो के वस्त्रों के रंग तथा उनके शारिरिक रंगों के विषय में कवि की कल्पना कितनी अद्भुत है, ओ इन पंक्तियों मे द्रस्टव्य है -

"नीलाम्वर श्यामल तनु की छवि, तनु छवि पीत सुवास ।

घन भीतर दामिनी प्रकाशत दामिनी घन चऊ पास ॥"

राधा की नीली साड़ी के अन्दर उनका गौर वर्ण शरीर तथा कृष्ण के श्यामल अंगों के उपर उनका पीताम्वर ऐसे प्रतीत होते है जैसे कि बादल के भीतर विजली चमक रही हो और विजली के भीतर बादल ।

परिच्छेद - ४

गीति काव्य की परिभाषा एवं गीति काव्य के विकास मे सूरदास का योगदान

गीत गाना मानव स्वभाव है । सुमित्रा नन्दन पन्त की इन पंक्तियों के आधार पर -

वियोगी होगा पहला कवि आह से निकला होगा गान

उमड़कर आँखों से चुपचाप वहीं होगी कविता अनुजान

-गीतों के प्रस्फुटन से ही कविता का जन्म हुआ है । गीत काव्य की प्राचीनता पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्टतः विदित होगा कि भारतिय साहित्य में सामवेद गीतों का प्रथम ग्रन्थ है । आरम्भ मे गीति काव्य धार्मिक पृष्ठभूमि को लिए हए था । गीतों की परम्परा अलौकिकता की ओर ही अधिक उन्मुख थी । मध्यकालीन राजनीतिक हलचलों ने गीतों मे ओज की प्रधानता ला दी थी, किन्तु वह बहुत थोड़े दिन तक रह सकी । जब हृदय पर कठिन कुलिश की चोट पड़ती है तो सहज हृदयोदगार के रुप में गीत प्रस्फुटित हो उठतें हैं । सदैव से ही इसमें हृदय के कोमलतम भावों का प्रकाशन होता रहा है । गीतों की रचना संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मात्रा में हुई है किन्तु जो महत्ता जयदेव के "गीत गोविन्द" को प्राप्त हुई है वह अन्य किसी गीति काव्य को नहीं । उसमें गेय तत्व की अपूर्व प्रधानता है । कृष्ण से संबन्धित कोमल वृत्तियोँ को लेकर कोमल कान्त पदावली में बड़े ही सुन्दर गीत रचे गये हैं । सूरदास ने सूरसागर मे ईन्ही कवियों का अनुसरण किया है । उन्होंने सवा लाख पदों की रचना काव्य शास्त्र में प्रचलित छन्द शास्त्रीय पद्धति में न करके राग रागनियों में की है । कला का चरम

उत्कर्ष नख-शिख वर्णन, रुपचित्रण, प्रणय तथा विरह निवेदन में ही दिखाया है । प्रसंगो के वर्णन उनके काव्य में मुख्य रुप से प्राप्त होते हैं । आत्म विभोरता, संगीतात्मकता तथा लालित्य इनकी रचनाओं की अद्वितीय विशेषताएँ हैं ।

सूरदास संगीत शास्त्र के वेत्ता थे । इनके पदों मे राग -रागनियों का शुद्ध रुप है । श्रेष्ठ संगीतज्ञ इनके पदों के केवल संगीत मात्र के लिए ही गातें हैं । विशेषता तो यह है कि इनके पदों में कितनी ही राग-रागनीयाँ तो ऐसी है जिनका नाम तक संगीत शास्त्रों में नही है । इनके संगीत में संगीत और काव्य दोनो का सुन्दर समन्वय हुवा है । सूरदास ने अपने पदों में लौकिक शब्दावली तथा प्रयोगों की प्रधानता रखी है ।

सूरदास को गीति काव्यकार के रुप में विशेषताओं का दिग्दर्शन कराने से पूर्व यह जान लेना उपयुक्त एवं प्रासंगिक प्रतीत होता है कि उनका गीति काव्य किस श्रेणी का है ? उन्होंने गीति काव्य की ही रचना क्यों की ? उसमें उन्हें कितनी सफलता मिली है ? जिस समय सूरदास काव्य रचना कर रहे थे उस समय संगीत विद्या अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई थी । वैजु वावरा तथा तानसेन जो इस विद्या के सम्राट कहे जाते है, उसी समय हुए थे । जनरुचि भी उस समय संगीत की ओर बहुत थी । सूरदास भी अपने समय के इस हवा से अछुते कैसे रह सकते थे ? दूसरी ओर उन्हे श्री नाथ जी के मन्दिर में कीर्त्तन करने का कार्य मिला हुआ था । कीर्त्तन मे उन्हे स्वयं पद गाकर सुनाते थे । कीर्त्तन के लिए यह आवश्यक एवं स्वाभाविक सा है कि जो कुछ भी कहा जाय वह लय और ताल से युक्त होना चाहिए । तभी कीर्त्तन मे कुछ आनन्द लिया जा सकता है । अपनी बंद आखों से कृष्ण के वाल रुप का वर्णन गाकर सुनाना निश्चित रुपेण उनकी प्रतिभा का परिचायक है । तात्पर्य यह है कि समस्त परिस्थितियों ने उन्हें गीति काव्य रचने की प्रेरणा दी ।

सूरदास के पदों की कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो अन्य गीति काव्यकारों मे नही मिल सकती । ऐसी एक विशेषता तो यह है कि उन्होंने जिस भी पद को जिस राग अथवा रागिनी में रचा है वे उसी राग अथवा रागिनी के अनुसार आज भी गायकों द्वारा गाये जाते है । किसी अन्य कवि के पदों को यह श्रेय प्राप्त नहीं है । दूसरी बात सूरदास ने पद रचना करते समय उस बात का भी ध्यान रखा है कि किस समय के लिए कौन सा राग उपयुक्त है । उदाहरण के लिए जो राग प्रातः काल के लिए उपयुक्त माना जाता है उसमे उन्होंने दोपहर अथवा साँय काल के समय गाये जाने वाले पदों की रचना नहीं की ।उन्होंने विभिन्न समयों के विभिन्न राग छाँट - छाँट कर उन्हीं में उस समय से संबन्धित पदों की रचना की है । उदाहरण स्वरुप राग ललित और राग भैरव प्रातः काल के लिए उपयुक्त है । कृष्ण को सोते से जगाने के लिए इन्हीं रागों का उपयोग किया गया है -

जागिए गोपाल लाल आनन्द विधि नन्द लाल

यसुमति कहै बा - बार भोर भयो प्यारे ।

- राग ललित

उठो नन्द लाल भयो भिनसार, जगावती नन्द की रानी

झारी लै जल बदन पखारौं सुख करि सारंग पानी

- राग भैरव

दोपहर के समय के पदों में सूरदास राग गौरी, आसावरी आदि का प्रयोग करतें हैं जो सर्वथा उपयुक्त है -

"मैया मोरी दाऊ बहुत खिजायौ ।

मोसो कहत मोल को लीन्हों तू जसुमति कब जायो ।"

- राग गौरी

सूरदास के गेय पदों की सबसे बड़ी विशेषता है कि कवि तीव्र अनुभुतियों का स्वभाविक रुप में प्रकट होता है । सूर का भाव - जगत संकुचित नहीं है । उन्होंने अपने पदों में विविध रागों की धारा वहाई है । श्रृंगार तथा वात्सल्य रस अधिक कोमल है तथा गीति काव्य के लिए अधिक उपयुक्त है । अतः इन्हीं की धारा उन्होंने अधिक वहाई है ।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो सूर के गीतों की विशेषता और प्रसिद्धि का श्रेय उनकी कोमल और सरस ब्रज भाषा को ही दिया जायगा । ब्रज भाषा स्वतः ही अपनी कोमलता और सरसता के लिए प्रसिद्ध है । सूर ने इस बात का और भी अधिक ध्यान रखा है । उन्होंने कठोर शब्दों का स्वयं ही बहिष्कार किया है तथा कोमल, सरस एवं स्वाभाविक शब्दों को ही विशेष स्थान दिया है ।

सच बात यह है कि सूरदास उच्च कोटि के कवि ही नहीं थे अपितु एक अच्छे गायक भी थे । उनके काव्य में काव्य और संगीत का जो सुन्दर समन्वय दिखाई देता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । उनकी रचनाएँ जहाँ काव्य - कला की दृष्टि से उत्तम मानी जाती है वहाँ उनका संगीत तथा गेयत्व की दृष्टि से भी बड़ा मान है ।

उनके पद इतने अधिक सरस एवं संगीतमय है कि उन्हें उनके मार्ग दर्शक कवियों के पदों से सुन्दर कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति न होगी । उनके पद कितने प्रभावोत्पादक है इस दोहे से जाना जा सकता है -

"किधौ सूर को सर लग्यौ, किधौ सूर को पीर ।

किधौ सूर को पद सुन्यौ, तन मन धुनत सरीर ।"

जयदेव

सामवेद के पश्चात लौकिक संस्कृत काव्य में सर्वप्रथम सवसे अधिक लोकप्रिय गीतिकार जयदेव हुए जिनका "गीत गोविन्द" गीति काव्य का एक अत्यन्त उत्कृष्ट काव्य है । गीति काव्यकारों के लिए जयदेव का "गीत गोविन्द" एक आदर्श ही बन गया । इसमें जयदेव के गीतों के द्वारा ईश्वर की स्तुति की है किन्तु अलौकिक प्रेम की व्यंजना करने के लिए उन्होंने लौकिक प्रेम को माध्यम बनाया है । उसमें लौकिक प्रेम इतने सरस एवं स्वाभाविक रुप में दर्शित है कि कुछ विद्वान इस काव्य पर अश्लीलता का दोषा रोपण करने से बाज नहीं आते हैं । वास्तव मैं लौकिक प्रेम की जो स्वच्छन्द एवं सरस धारा इस काव्य में वहाई है, उसे देखकर उन पर दोषारोपण करना सहज एवं स्वाभाविक हो ही जाता है । वास्तविकता इसके विपरित है । उनका मूख्य उद्देश्य था ईश्वर-स्तुति जो अत्यन्त पावन था, अलौकिक था । इन विद्वानों के शंका समाधान हेतु "गीत गोविन्द" का आरम्भ का ही एक श्लोक प्रस्तुत है -

"यदि हरि स्मरणे सरसं मनो

यदि विलास कलानु कुतुहलम् ।

मधुर-कोमल कान्त पदावली

श्रुणु तवां जयदेव सरस्वती ।"

-इस श्लोक के पढ़ने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि जयदेव का भगवान की विलासमयीं लीलाओं का वर्णन करने में क्या मूल उद्देश्य छिपा हुआ था । वस्तुतः उनका

उद्देश्य था भगवान की स्मृति करना जो अत्यन्त पुनीत एवं पवित्र था । कुछ भी हो गीति काव्य के इतिहास में जयदेव का स्थान वहुत ऊँचा है । इनकी सी सरसता और कोमल कान्त पदावली अत्यन्त कठिनता से ही मिलेगी । इतना ही नहीं "गीत गोविन्द" का गीति काव्य के इतिहास में एक ऐतिहासिक महत्व है । यह ग्रन्थ गीति काव्य के इतिहास में सर्वप्रथम ग्रन्थ माना जाता है । सामवेद को शुद्ध गीति काव्य माना जाता है । परन्तु जयदेव जी ही गीति काव्यकारों के पथ प्रदर्शन कर्त्ता हैं । इन्हीं के "गीत गोविन्द" से प्रभावित होकर विद्यापति आदि श्रेष्ठ कवियों ने सुन्दर एवं सरस गीतों की रचना की थी ।

हिन्दी में यह गीत-पद्धति वीरगाथा काल में वीर गीतों के रुप में चली । इन वीर गीतों में कवि अपने आश्रय दाताओं के शौर्य, पराक्रम, ऐश्वर्य और प्रेम आदि का वर्णन करते थे । भक्ति काल में यह पद्धति अबाध रुप में चली तथा निगुर्ण और सगुण दोनों प्रकार के भक्तों ने इस पद्धति में अपनी रचनायें प्रस्तुत की । निगुर्ण भक्तों में नामदेव, कवीर, दादू, नानक, रैदास आदि का नाम बहुत प्रसिद्ध है । सगुण भक्तों में इस दृष्टि से विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास तथा मीरा के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं ।

कबीर

गेयत्व की दृष्टि से कबीर के पद भी अपना एक विशेष महत्व रखते है । इनके पदों का प्रचार विशेष रुप से साधु सन्तों में ही अधिक मात्रा में रहा है । ये साधु सन्त अधिक पढे लिखे न होते हुए भी इन पदों को एक दूसरे से सुनकर तथा स्मरण करके सुन्दर लय के साथ गाया करते थे, किन्तु एक बात अवश्य है कि इन कवियों के पद भक्त कवियों के पदों के समान अधिक लोकप्रिय न हो सके । इसका एक मात्र कारण यह था कि इनके भाव इतने उच्च तथा गहरे है कि साधारण मनुष्य उनको नही

समझ सकता । अतः आनन्द भी नहीं ले सकता । किन्तु जिन पदों में हठयोग, समाधि, साधना, योगाभ्यास आदि वर्णित न होकर कबीर आदि के हृदय की तीव्र अनुभूति व्यक्त है वह अत्यन्त सुन्दर तथा लोकप्रिय है । चाहे साधु और महात्माओं द्वारा ही सही, वे बड़ी तल्लीनता और लय के साथ गाये जाते है । अतः गीति काव्य के इतिहास में इन संत कवियों को यदि विशेष गौरव का स्थान प्राप्त नहीं है तो उन्हें गौरव देना अवश्य श्रेयष्कर है ।

व्यक्तित्व की विशालता काव्य शैली की महत्ता एवं वाग्विदग्धता निश्चित रुपेण उनकी सहृदयत्ता तथा भावुकता को निर्दिष्ट करती है । सूरदास जी निश्चित रुपेण काव्यशास्त्र के परम विज्ञ आचार्य थे । एक ओर उनकी कविताओं में भाव पक्ष का चरम विकास दिखाई देता है वहीं दूसरी ओर उनका कलापक्ष भी न्यून नहीं कहा जा सकता । सूरदास मन के गहरे थे और सूक्ष्म भावों के पारखी चित्रकार भी । इनकी अभिव्यंजना शक्ति असीम है ।

भक्तिरस के गायक कवियों में सूरदास का स्थान सबसे ऊँचा है । यद्यपि उनके काव्य मे कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन चित्रण नहीं है तथापि उनके बालरुप का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण उन्होंने किया है वैसा चित्रण हिन्दी में ही नहीं, विश्व की किसी भी भाषा में नहीं मिल सकता । श्रृंगार रस के अन्तर्गत भी सूर की समता करना सहज नहीं है । श्री कृष्ण और राधा के रतिभाव का वर्णन करने में भी उनकी उपमा नहीं मिल सकती । वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत भ्रमरगीत नामक प्रसंग में तो सूर की कवित्व शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है । उनके श्रृंगार वर्णन में जयदेव और विद्यापति जैसी लौकिकता नहीं आने पाई है । वियोग की जितनी भी अन्तर्दशायें हो सकती है इन सबका चित्रण सूर के भ्रमरगीत में प्रस्तुत है । इन्होंने कृष्ण और यशोदा का जो रुप चित्रित किया है उसमे विश्व व्यापी माता और पुत्र का प्रेम दिखाई देता है ।

परिच्छेद - ५

काव्य का महत्वपूर्ण पक्ष

भाषा -शैली- अलंकार -रस

भाषा

किसी भी कवि की भाषा का अध्ययन भावों को साथ रख कर करना ही श्रेयष्कर होता है क्यों की इसके अतिरिक्त और कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं होता जिसके बल पर यह प्रमाणित किया जा सके कि भाषा तथा भाव अलग -अलग रख कर देखे जा सकते है । अभिव्यक्ति तो वास्तव मे एक अखंड वस्तु है । यदि कोई कवि भाषा के ही नये - नये प्रयोग करता है तो वह भाषा - क्रीड़ा ही कही जायगी, उसे काव्य सृजन कदापि नहीं कहा जा सकता । काव्य सृजन मे मानसिक हलचल का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है । उसी के अनुसार शब्द अपने आप उतरते चले आते है, किन्तु जो कवितायें बिना किसी आवेश के लिखी जाती है अर्थात् ठण्डी होती है, उनमें अभिव्यक्ति की सरलता से पृथक किया जा सकता है । सूरदास चेतना के क्षोभ को वाणी देने वाले कवि है । वे केवल भाषा के प्रयोक्ता नहीं कहे जा सकते । यदि कोई उनकी भाषा का लाघव, लोच, गंभीरता, चपलता तथा व्यंग्य शक्ति देखना चाहता है तो उसे सर्व प्रथम गोपियों कि मानसिक स्थितियों को देखना पडेगा कि किस प्रकार अनुकुल भाव को तदनुरुप शब्दावली अपने आप मिल गई है । यह गुण सूर की भाषा मे भ्रमरगीत मे विशेष रुप से लक्षित होता है ।

सूरदास की भाषा ब्रजभाषा है जो हिन्दी का ही एक विशिष्ट रुप है । यदि सूरदास की शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा के पूर्व की राज स्थानी मिश्रित ब्रजभाषा के विकास पर एक दृष्टि डाला जाय तो कहना पडेगा कि सूर किसी ब्रजभाषा की अज्ञात परम्परा में अवतीर्ण हुए थे, किन्तु उनका इसके परिष्कार और अलंकृति में वहुत बड़ा

हाथ है । जिस प्रकार द्विवेदी युग के हिन्दी कवियों ने खड़ीबोली की सत्ता पहले से रहने पर भी खड़ीबोली में ही रचनायें रची थी और खड़ीबोली के परिष्कार और अलंकृति में अपूर्व सहयोग था, उसी प्रकार सूरदास ने भी ब्रजभाषा के पूर्व रुप के होते हुए भी उसे संवारा और सजाया । यद्यपि सूरदास के पूर्ववर्ती कवियों -अमीर खुसरो,नामदेव,कवीर, गुरु नानक आदि ने भी ब्रजभाषा मे अपनी रचनायें रचीं किन्तु भाषा का वह रुप व्यवस्थित एवं साहित्यिक नहीं कहा जा सकता । सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को परिष्कृत एवं अलंकृत रुप में प्रयुक्त किया है । वे ही ब्रजभाषा के इस प्रकार के व्यवस्थित एवं साहित्यिक रुप के जन्म दाता माने जाते हैं । दृष्टिकूट की रचना की परंपरा वेद उपनिषद और महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों के समय से ही चली आ रही है । सूरदास एक भक्त कवि थे । वे राधा के नख-शिख वर्णन गोपनीय ढंग से करना चाहते थे । अतः उन्होंने ऐसे पदों की रचना की जिससे साधारण व्यक्ति उनका अर्थ ही न लगा सके । संभवतः इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर सूरदास ने दृष्टि को छलने वाले इन दृष्टिकूटों की रचना की होगी ।

सूर महाकवि थे और महान हृदय पारखी । अतः भावना के स्तर के अनुसार भाषा के कई रुपों का प्रयोग करने में वे समर्थ हुए हैं । उपहास तथा विद्रुप करते समय उनकी भाषा भी व्यंगमयी और चपल हो जाती है । सामान्य बोलचाल के शब्दों के प्रयोग की ऐसे प्रसंगों में अधिकता रहती है -

"ऊधो भली करी तुम आये ।

ये बातें कहि या दुख मे ब्रज के लोग हँसाये ।"

X X X X

ऊधो जान्यो ज्ञान तिहारो ।

जानै कहा राज गति लीला, अन्त अहीर विचारो ।

-इसी प्रकार भावातिरेक प्रधान स्थलों की भाषा में कवि संस्कृत प्रधान तत्सम शब्दावली का प्रयोग नही करता, वरन ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा कवि के अन्तस् से निकल रही है और उसमे कोमलता अधिक बढ जाती है । व्यंय करते समय जो खींझ और झल्लाहट दिखाई पड़ती है वह यहाँ दीनता, विवशता और अवसाद मे परिवर्तित हो जाती है । मानसिक स्थिति के अनुसार मानों भाषा भी दीन, विवश और अवसादमयी हो गई है -

"काहे को गोपीनाथ कहावत ?

जो पै मधुकर कहत हमारे, गोकुल काहे न आवत ।"

भाषा के प्रयोग में सूर की कुछ विशेषताएँ द्रष्टव्य है । किसी - किसी स्थान पर "रे"और "रि" का प्रयोग कर सूर ने भाषा को कोमल बनाने का प्रयास किया है । जैसे -

"जा जा रे भौंरा दूर - दूर ।

रंग रुप और एकहि सूरति, मेरो मन कियो चूर - चूर ।"

कहावतों एवं मुहावरों का काव्य मे एक विशेष महत्व है । इनके प्रयोग से काव्य सुन्दर एवं कर्णप्रिय हो जाता है ।

अलंकारों का प्रयोग

अलंकारों के प्रयोग मे भी भाषा का चमत्कार दिखाइ देता है । इससे भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि होती है । सूरदास ने अलंकारों मे यमक, अनुप्रास, उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति आदि कुछ अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रुप में किया है । इनमे भी उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग कुछ अधिक मात्रा में दिखाई देता है । इनकी उपमायें यदि भावचित्र प्रत्यक्ष उपस्थित कर देती हैं तो इनके उत्प्रेक्षा के प्रयोग

में कल्पना की नवीनता देखते ही बनती है । सूर की अलंकार योजना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

प्रीति करि दीन्हीं गरे छुरी ।

जैसे वधिक चुगाय कपटकन, पाछे करत बुरी

X X X X

जोग हमें ऐसो लागत, ज्यों तोहि चंपक फूल

अब मन भयो सिंधु के खग ज्यों फिरि फिरि सरस जहाजन

X X X X

रतन जटित कुंडल श्रवननि कर गंड कपोलहि झांई

मनु दिनकर प्रतिविम्ब मुकुर मह ढुंढ़त यह छवि पाई

अलंकार विधान में भी कल्पना कवि की बहुत सहायता करती है । सूरदास की कल्पना शक्ति और अलंकार विधान उनके सरस हृदय,मर्मज्ञता और सौन्दर्य प्रियता के स्पष्ट प्रमाण है । उन्होंने अपनी अद्‌भुत कल्पना शक्ति द्वारा ऐसे भाव-चित्र उपस्थित किये हैं जो साहित्य जगत में सदैव अमर रहेंगे । सूरदास ने रुप,वस्तु, गुण, स्वभाव और भाव-चित्रण में जड़ प्रकृति, मानवेत्तर सृष्टि, मानव समाज और मानसिक भावों के विशाल जगत में प्रवेश करके अपनी अनुपम कल्पना शक्ति, अन्तदृष्टि और अनुभव गांभीर्य का परिचय दिया है ।

नीलाम्बर श्यामल तनु की छवि, तनु छवि पीत सुवास

घन भीतर दामिनी प्रकाशन, दामिनी घन चहु पास ।

इसी प्रकार नयनों के संबन्ध में सूर ने अनेक कल्पनायें की है । वियोगिनी गोपियों के नयनों के वर्णन में कवि की कल्पना इस पद में दर्शनीय है -

सखि इन नैनन ते घन हारे ।

बिनु ही ऋतु बरसत निसि वासर

सदा मलिन दोऊ तारे ।

-सूर की सुन्दर एवँ अलौकिक कल्पना बादलों के विषय में दर्शनीय है -

देखियत चहुँ दिशि ते घन घोरे ।

मानों मत्त मदन के हथियन बलि करि बन्धन तोरे ।

X X X X

"स्याम सुभग तन चुयत गंड मद बरसत थोरे-थोरे

रुकत न पौन महावत हू पे मुरत न अंकुस मोरे ।"

—कवि उत्प्रेक्षा करता है कि बादल क्या है मानों मदमस्त हाथियों ने बन्धन तोड़ दियें हों । धीमी -धीमी बूंदों का गिरना ऐसा है मानों गडं स्थल से मद चू रहा हो । पवन रुपी महावत उन्हें अंकुश मार रहा है परन्तु फि भी वे मुड़ते नहीं है ।

सूरदास का स्वयं का जीवन भी प्राकृतिक वातावरण मे ही व्यतीत हुआ था । उनका अधिकांश जीवन ब्रज भूमि में ही बीता था । ब्रज भूमि के प्राकृतिक दृश्यों को अपने नेत्रों से देखा अथवा परखा था । इन सभी कारणों से यह विदित होता है कि सूर को प्रकृति की अद्‌भुत परख थी ।

सूरदास भाव जगत के सुन्दर चितेरे हैं । बाल मनोविज्ञान का इतना हृदय ग्राही वर्णन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है, वह निश्चित रुपेण हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है । श्री कृष्ण का रुप वर्णन, उनकी बाल सुलभ चेष्टायें, मातृहृदय का सजीव चित्र, गोचारण, माखन चोरी, कृष्ण और राधा का स्वाभाविक प्रणय आदि इतने सरस और मर्म स्पर्शी हैं, जिसे नीरस से नीरस हृदय भी इन प्रसंगों को पढकर अथवा सुनकर विह्वल हो उठते हैं ।

सूर के कव्य में श्रृंगार तथा वात्सल्य रस का ही बोल - बाला है । मन के इन दो कोमलतम और मधुरतम भावों के क्षेत्र का ऐसा कोई भी सूक्ष्म से सूक्ष्म कोना नहीं है जिसका विशद वर्णन इन नेत्र विहीन कवि सूर ने अपने पदों में न उतारा हो । इन दोनो रसों का वर्णन सूरदास ने प्रचुर परिमाण मे किया है -

यशोदा हरि पालने म्हुलावै ।

हलरावै दुलरावै, मल्हरावै जोई सोई कछु गावै

मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुलावै

तू काहे नहिं वेगहि आवे तोको कान्ह बुलावै ।

कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।

कृष्ण घुटनों के बल चल रहे हैं । यशोदा स्वयं आनन्दित होती है और नन्द को भी इस दृश्य का आनन्द लेने के लिए विवश करती है -

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी

जो मन में अभिलाष करत ही सो देखन नन्द घरनी

खनुक म्हुनुक नूपूर बाजत पग यह है अति मन हरनी

बैठी जात पुनि उठत तुरत है अति छवि जात न वरनी

कृष्ण माँ के वहकावे में आकर दूध पी लेते है, किन्तु दूध पीने के साथ ही साथ अपनी चोटी भी देखते हुए माँ से शिकायत करते हैं -

"मैयाँ कबहि बढैगी चोटी,

किति बार मोहि दूध पियत भई

यह अजहूँ है छोटी ।"

"माखन चोरी" प्रसंग वात्सल्य रस का अनुपम उदाहरण है । ब्रज के घरों मे घुस कर सखाओं के साथ माखन चुराना और पकड़े जाने पर कृष्ण बुद्धि चातुर्य का प्रयोग करते हैं । यह वर्णन जितना ही विनोदपूर्ण है उतना ही सहज एवं स्वाभाविक -

मैया मै नही माखन खायो

ख्याल परै ये सखा सबै मिली बरबस मुख लपटायो

मै बालक वहियन को छोटो छीको केहि विधि पायो

भोर भये गउअन के पाछे मधुवन मोहि पठायो

चार पहर वंशी वट भटक्यो साँझ पड़े घर आयो

जिए तेरे कछु भेद उपजि है जानि परायो जायो

-इस प्रकार सूर ने मातृहृदय का अत्यन्त स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है । रस की दृष्टि से सूरदास का वात्सल्य वर्णन निस्सन्देह अनुपमेय है । उन्होंने अपनि बन्द आँखों से वात्सल्य का कोना - कोना झाँक लिया है ।

वात्सल्य के साथ-साथ श्रृंगार रस का रस-राजत्व सूरदास ने प्रदान किया है । प्रेम का जैसा स्वभाविक एवं मधुर विकास सूर ने दिखाया है वैसा अन्य कवियों ने नहीं । सूरदास ने प्रेम के अन्तर्गत यह दर्शाने की चेष्टा की है कि कितनी मनोदशायें हो सकती है । राधा कृष्ण के प्रणय की झाँकी इस प्रकार है -

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी ।

औचक ही देखी तह राधा नयन विशाल भाल दिए रोरी

सूर स्याम देखत ही रीझै नैन नैन मिली परी ठगौरी ।

सूर की राधा का प्रेम लरिकाई का प्रेम है जिसमें एक दूसरे को स्वाभाविक रुप से हृदय समर्पित किया गया है । संयोग श्रृंगार की दृष्टि से रस की निष्पत्ति बड़ा ही सरल और संस्पर्श से भरा पड़ा है ।

अब तनिक भ्रमरगीत प्रसंग के अन्तर्गत भी विरह विदग्ध गोपिकाओं की भावनाओं का अवलोकन किया जाय । उद्धव की निरस योग चर्चा सुनकर गोपियाँ तर्क वितर्क नहीं करती बल्कि वे अपना हृदय ही खोल कर रख देती है -

ऊधो मन नाहीं दस बीस ।

एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधै ईस

X X X X

उर में माखन चोर गड़े ,

अब कैसहु निकरस नाही ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े ।

इन पंत्तियों में विवशता के साथ-साथ गोपियों की चतुरता एवं वाग्वैग्धता भी देखते ही बनता है। वे उद्धव का उपहास भी बड़ी चतुरता से करती है -

"आयो घोष बड़ो व्योपारी

लादि खेप गुन ग्यान जोग की ब्रज मे आन उतारी"

X X X X

निर्गुण कौन देस को बासी ?

गोपियों का साधारण तर्क है कि ज्ञान और योग की बात छोड़कर कृष्ण से मिलन की बात ही हम गोपियों को भाती है।

"कान्ह भए प्राण मय प्राण भए कान्हमय,

यह मै नहीं जानती, प्राण है कि कान्ह है। "

-सूरदास जी कृष्ण को परब्रम्ह् मानते हैं और गोपियों को उनकी शक्ति। इसमे सन्देह नहीं कि शक्ति अपने आश्रय से कभी भी पृथक नहीं होती। इस आधार पर कृष्ण और गोपियों में कोई अन्तर नही है। सूर ने स्वयं लिखा है -

"गोपी ग्वाल कान्ह दुइ नाहीं ये कहुँ नेक न न्यारे।"

परिच्छेद -६

भक्ति रस के गायक कवि सूरदास

गीत काव्य की प्राचीनता पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्टतः विदित होगा कि भारतिय साहित्य में सामवेद गीतों का प्रथम ग्रन्थ है । आरम्भ मे गीति काव्य धार्मिक पृष्ठभूमि को लिए हए था । गीतों की परम्परा अलौकिकता की ओर ही अधिक उन्मुख थी । मध्यकालीन राजनीतिक हलचलों ने गीतों मे ओज की प्रधानता ला दी थी, किन्तु वह बहुत थोड़े दिन तक रह सकी । जब हृदय पर कठिन कुलिश की चोट पड़ती है तो सहज हृदयोदगार के रुप में गीत प्रस्फुटित हो उठतें हैं । सदैव से ही इसमें हृदय के कोमलतम भावों का प्रकाशन होता रहा है । गीतों की रचना संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मात्रा में हुई है किन्तु जो महत्ता जयदेव के "गीत गोविन्द" को प्राप्त हुई है वह अन्य किसी गीति काव्य को नहीं । उसमें गेय तत्व की अपूर्व प्रधानता है । कृष्ण से संबन्धित कोमल वृत्तियोँ को लेकर कोमल कान्त पदावली में बड़े ही सुन्दर गीत रचे गये हैं । सूरदास जी की लोकप्रियता का मूल कारण आत्म-विभोरता, संगीतात्मकता तथा सहज स्वभाविक भावनाओं का चित्रण है । उन्होंने जयदेव और विद्यापति का अनुसरण तो अवश्य किया किन्तु उसमें भी अपनी मौलिकता को अक्षुण्य बनाये रखा । सूरदास एक प्रतिभाशाली कलाकार थे । कृष्ण के प्रति राधा का स्वकीया प्रेम सूरदास की अपनी प्रतिभा का द्योतक है । राधा और कृष्ण के अभिसार, मान, सुरति तथा नख-शिख वर्णनों में उन्होंने अभिधा का प्रयोग न करके व्यंजना का प्रयोग किया है । नख-शिख वर्णन में तो उन्होंने दृष्टिकूटों का प्रयोग कर दिया है ।

महाकवि सूरदास का नाम हिन्दी साहित्य में भक्त कवि के रुप में प्रसिद्ध है । सूरदास सर्व प्रथम भक्त कवि के रुप में प्रसिद्धी पाएँ हैं । वे महाकवि तो थे ही किन्तु कवि होने से पूर्व वे भक्त थे । भक्त पहले थे कवि बाद में । अतः जहाँ एक ओर सूरदास

के कवि रुप की विवेचना होती है और वात्सल्य एवं श्रृंगार का वर्णन बड़ा प्रभावोत्पादक रुप मे हुआ है वहीं दूसरी ओर उनकी भक्ति की तल्लीनता को देखकर गद गद हुए विना नहीं रहा जाता ।

सर्व प्रथम सूरदास की भक्ति पद्धति पर विचार परमावश्यक प्रतीत होता है । उनके गुरु श्री बल्लभाचार्य जी थे जीन्होंने उन्हें दीक्षा दिया था । चुंकी श्री बल्लभाचार्य जी पुष्टि मार्गी सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे अतः सूरदास पर पुष्टि मार्गी का प्रभाव परना स्वाभाविक है । पुष्टि मार्गी सिद्धान्त के अनुसार श्री कृष्ण उपास्य देव है जिनसे तात्पर्य उसी परम ब्रम्ह् परमेश्वर, निगुण निराकार ईश्वर से है जो सृष्टि की उत्पत्ति, विनाश एवं रक्षा करने वाला है । आचार्य जी इश्वर को निराकार नहीं मानते थे । उनका मत था कि वह अवतार लेते है और अपने भक्तों को प्रसन्न करते है । इस प्रकार वे एक ओर अक्षर पर ब्रम्ह् है और दूसरी ओर भक्त वत्सल मानुष रुपधारी एवं लीला विहारी श्री कृष्ण है । श्री आचार्य जी के अनुसार "कृष्णानुग्रहरुपहि पुष्टि" अर्थात कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है । भगवान श्री कृष्ण जिस पर अनुग्रह करते हैं उसे ही उनका भक्ति प्राप्त होती है । बल्लभ सम्प्रदाय में यह पुष्टि चार प्रकार की बतलाई गई है - प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्टि पुष्टि और शुद्ध पुष्टि । शुद्ध पुष्टि ही भक्त का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है । तभी भक्त परम् विरहा भक्ति को प्राप्त होता है और परम् पद को प्राप्त करके अन्त में गौलोक निवास करते है । सूरदास ने इसी अनन्य भाव से कृष्ण की उपासना की है ।

श्री आचार्य जी से दीक्षा लेने से पूर्व सूरदास की भक्ति पद्धति से संबन्धित विनय के पद प्राप्त होते है । इन पदों में भी सूर का भक्त हृदय स्पष्ट झलकता है । इनके विनय से संबन्धित पदों में दैन्य भावना का प्रकाशन दर्शनीय है -

"प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ ।

और पतित सब द्यौस चारि के,

हौं तो जनमत ही कौ ।"

दास्य भावना का सुन्दर प्रकाशन निम्न पंत्तियों में देखिये-

"रे मन कृष्ण नाम कहि लिजै

गुरु के वचन अटल करि मानो

साधु समागम कीजै ।"

-भगवान की भक्ति पाने पर तो भक्त को कोइ भय नहीं रह सकता । सूरदास की भक्ति पद्धति में एक बात विशेष उल्लेखनीय है । वे अवतारवाद में विश्वास करने के कारण भागवत के आधार पर सूरसागर में नौ अवतारों की कथा गाई है और उसमे राम का वर्णन काफी विस्तार से भी किया है किन्तु तल्लीनता उनकी कृष्ण के प्रति भी रही है । वास्तव मे जितनी अनन्यता कृष्ण के प्रति है उतनी और किसी अवतारवाद में नहीं है । अपनी अनन्यता को स्वयं स्वीकार किया है -

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावे ।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै ।

सूरदास इस बात को मानते है कि कृष्ण परम् बम्ह, निर्गुण भगवान हैं । उन्होंने अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है कि भगवान अद्वैत और गुणातीत हैं । वे इस तथ्य को मानते भी हैं और जानते भी हैं, किन्तु फिर भी उन्होंने अपने मन को सगुण भगवान की ओर ही अधिक लगाया है । वे सगुणोपासक कवि हैं । उन्होंने सहस्त्रों पदों की रचना साकार भगवान के संबन्ध में की है । इस संबन्ध में उन्होंने स्वयं अपने पद में कहा है -

"अवगति गति कछु कहत न आवै ।

ज्यों गुँगेहि मीठै फल को रस अन्तर्गत ही भावै ।

परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै

मन बानी कौ अगम अगोचर सो जाने सो पावै ।"

शास्त्रों में भक्ति करने के नौ प्रकार बताये जाते है जो नवधा भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है । इनके नाम इस प्रकार है - श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन । आत्म निवेदन की दशा सब से अन्त में आती है । इस दशा का आगमन उस समय होता है जब भक्त मन,वाणी और कर्म तीनों से भगवान की ओर उन्मुख हो जाता है । भगवान के प्रति भक्त को जितनी लगन होगी उतनी ही श्रेष्ठ भक्ति कहलायेगी । निश्चित रुपेण सूरदास की भक्ति में जो तन्मयता और तल्लीनता दृष्टिगत होती है, वह कोई साधारण बात नहीं हैं । वे भगवान के अनन्य भक्त थे । उन्होंने भक्ति के सब विधियों पर पदों की रचना की है, किन्तु सूरसागर में विनय और सखा भाव की भक्ति के पदों की संख्या अधिक मात्रा में है । जैसे कि पहले भी बताया गया है कि श्री आचार्य जी से दीक्षा लेने के पूर्व वे गौ घाट पर रहा करते थे । उन्होंने विनय के पदों की ही रचना की थी और इस प्रकार के पदों मे दैन्य, दास्य, भक्त, वात्सल्यता, समर्पण और भगवान के प्रति अटुट विश्वास दर्शनीय है किन्तु दीक्षा के पश्चात सूर में सख्य भाव की भक्ति के पद ही अधिक मात्रा में रचे थे । साथ ही इस प्रकार के पदों की रचना के साथ-साथ वे नवधा भक्ति के प्रकार से संबन्धित पद भी रचते थे ।

सखाभाव

- सूरसागर में सखाभाव की भक्ति के पद प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते है । इस भाव की भक्ति में भक्त अपने इष्ट देव के साथ कुछ अधिक सान्निध्य स्थापित कर लेता है । इष्ट देव का विविध प्रकार की लीलाओं में वह साथ-साथ विचरण करता है । उनका खाना-पीना, बोलना-हँसना,खेलना-कूदना आदि भक्त से गोपनीय नही रहता । वे कृष्ण के सखा है ,और इसी प्रकार की भक्ति भी है । जैसे गौचरण के समय ग्वाल वालों से एक सखा की भाँति स्नेहपूर्ण कीड़ा, वार्तालाप आदि करते है । "खेलन में को काको गुसैंयाँ" इस बात का स्पष्ट प्रमाण है । छाक खाने वाले प्रसंगों कृष्ण को छीन-छीन कर छाक खाते देख कर कौन ऐसा भक्त होगा जिनके हृदय में आनन्द और सुख की लहरें न उठती होगी -

"ग्वालन कर तै कौर छुड़ावत ।

जूठों लेत सबन के मुख को अपने मुख ले नावत ।"

-सूर ने सखा रुप में स्वयं भी अपना संबन्ध श्री कृष्ण से प्रदर्शित किया है । सख्य भाव की भक्ति के कारण उनकी घनिष्ठता अपने इष्टदेव से बहुत अधिक बढ़ जाता है । सूर के भक्त हृदय से निःसृत भाव अलौकिक प्रेम को प्रकट करतें है ।

वात्सल्य और माधुर्य भाव

वात्सल्य भक्ति के इतिहास पर यदि दृष्टि डाला जाय तो स्पष्ट रुप से ज्ञात होता है कि वात्सल्य भक्ति के कुछ उदाहरण सूर से पहले केवल नारद भक्ति सूत्र में ही पाये जाते है । सूर ने नन्द और यशोदा के माध्यम से कृष्ण के प्रति नाना प्रकार से वात्सल्य भाव प्रकट किये हैं । वात्सल्य वर्णन में सूर की जो तल्लीनता दिखाई देती है,वह अन्यत्र

दूलर्भ है । वात्सल्य भक्ति के चित्रण में सूर ने अनेक मौलिक उद्‌भावनाओं को जन्म दिया है । उनकी इस प्रकार की भक्ति के उदाहरण द्रष्टव्य है -

यशोदा हरि पालने म्फुलावै ।

हलरावै दुलरावै, मल्हरावै जोई सोई कछु गावै

X X X X

जेवत स्याम नन्द की कनियाँ ।

कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नन्द रनियाँ ।

X X X X

आपन खात नन्द मुख नावत सो सुख कहत न बनियाँ,

जो सुख नन्द जसोदा,विलसत सौ नहि तिहुँ भुवनियाँ ।

माधुर्य भाव की भक्ति में उनकी मौलिक उद्‌भावनायें दर्शनीय हैं । स्त्री पुरुष के मूल प्रकृतिगत प्रेम को भक्ति की ओर लगाकर सूर ने रस और आनन्द का संचार करने वाली भक्ति की पद्धति निकाली है । प्रेम की यह भावना प्रत्येक प्राणी के लिए एक प्राकृतिक वस्तु है । सूर ने इसी प्रेम भावना को इश्वर भक्ति के रुप में दिखा कर माधुर्य भाव की पद्धति की नवीन उद्‌भावना की है । भागवत मे भी ऐसा प्रसंग आता है कि गोपियो ने श्री कृष्ण के प्रेम की प्राप्ति के अनेक प्रयत्न किये है । उन्हें इस प्रेम की प्राप्ति के समक्ष किसी भी वस्तु की परवाह नहीं है । सूरदास ने लौकिक प्रेम की भावना परिष्कृत करने का आधार ही कृष्ण प्रेम रखा है । गोपियाँ और कृष्ण का आपस में कोई दुराव ही नहीं है । अनेक लीलाओं द्वारा गोपियाँ उनकी ओर आत्माभिमुख हो जाती हैं । मुरली के माधुर्य से वे मतवाली हो गई है -

जब मोहन मुरली अधर धरी

गृह व्यवहार थके आरजे पथ तजत न सके करी ।

वास्तविक माधुर्य भाव की भक्ति विरह में होती है । भगवान के प्रति आसक्ति को विरह द्वारा तीव्रता और तीव्रतम बनाते रहने से ही उसका प्राप्ति हो सकती है । इस प्रसंग के अन्तर्गत सूर ने जो विप्रलम्भ श्रृंगार का चित्रण किया है, वह हिन्दी में अपनी समानता नहीं रखता । भ्रमरगीत का प्रसंग निश्चित रुपेण एक मार्मिक प्रसंग है । कृष्ण उद्धव को गोपियाँ के पास ज्ञान का उपदेश देने भेज देते है । गोपियाँ उनके निर्गुण ब्रम्ह् के उपदेश की हँसी उड़ाती है -

"आयो घोस बडो व्यापारी

X X X X

उर मे माखन चोर गड़े

अब कैसेहुँ निकसत नाहीं ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े ।

X X X X

मधुवन तुम कहत रहत हरे ।

विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे ।"

कहाँ तक कहा जाय सूरसागर का यह प्रसंग अनेक ऐसे ही सुन्दर उदाहरणों से भरा पड़ा है । भ्रमरगीत का मुख्य उद्देश्य निर्गुण का खंडन तथा सगुण के मंडन में भी सूरदास पूर्णतया सफल हए हैं । गोपियों की अटूट प्रेम भक्ति तर्कज्ञान के पोषक ऊधो

पर भी अपना प्रभाव डाल देता है । गोपियों की ही नहीं सूरदास के इन पदों ने उनके काव्य संबन्धी सौन्दर्य को अतुलनीय बना दिया है ।

दृष्टिकूट की रचना की परंपरा वेद उपनिषद और महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों के समय से ही चली आ रही है । सूरदास एक भक्त कवि थे । वे राधा के नख-शिख वर्णन गोपनीय ढंग से करना चाहते थे । अतः उन्होंने ऐसे पदों की रचना की जिससे साधारण व्यक्ति उनका अर्थ ही न लगा सके । संभवतः इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर सूरदास ने दृष्टि को छलने वाले इन दृष्टिकूटों की रचना की होगी । राधा का ऐसा ही नख-शिख वर्णन इस दृष्टिकूट में द्रष्टव्य है -

"अद्भुत एक अनुपम वाग

जुगल कमल पर गज क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग

हरिपर सरवर सर पर गिरिवर, गिरि पर फुले कंज पराग

रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग

फल पर पुहुप -पुहप पर पल्लव, ता पर सुक पिक मृगमद काग

खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मणिधर नाग ।"

उपर्युक्त पद एक ऐसा ही दृष्टिकूट है जिसका अर्थ साधारण व्यक्ति की पहुँच से बाहर की वस्तु है । इस प्रकार भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों दृष्टियों से सूरदास की कला अप्रतिम है ।

परिच्छेद -७

उपसंहार

अन्य भाषाओं के साहित्य की भाँति हिन्दी भाषा का साहित्य भी अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से पूर्णतया प्रभावित हुआ । वैसे तो हिन्दी साहित्य का प्रत्येक काल अपने समय के समाज से पर्याप्त घनिष्ठ संबन्ध रखता है किन्तु हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग (भक्ति काल) इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण काल है । साहित्य और समाज का इतना घनिष्ठ संबन्ध इस काल से पूर्व नहीं दिखाई देता । इस काल का समय सन् १४०० ई. से १६०० ई तक माना जाता है । इसी समय से सूरदास का जीवन काल संबन्धित है । इस काल के अन्य प्रमुख कवियों जैसे कबीर, तुलसी, मीरा आदि की भाँति सूरदास भी अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे । वे युग के प्रतिनिधि ही नहीं, युग निर्माता भी है । इनका काव्य ऐसा जातिय काव्य है कि जिसके अध्ययन के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की समीक्षा आवश्यक है ।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

सर्वप्रथम राजनीतिक परिस्थितियो पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है । हर्षवर्धन की मृत्यू के वाद उस क्षेत्र में अव्यवस्था का आरम्भ हो गया । किसी एकछत्र सम्राट के अभाव में छोटे-छोटे राज्यों के राजपूत शासक अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में लग गये । अतः उनके बीच आपस में संघर्ष रहने लगा और एकता की भावना समाप्त हो गई । प्रत्येक व्यक्ति का क्षात्र धर्म यहीं रह गया था कि वे अपना-अपना प्रभुत्व बढावें, झुठी मान-मर्यादा की रक्षा करे तथा इन्द्रिय लोलुपता के पाश में आवद्ध होकर परस्पर युद्ध करते रहें । अतः बाहर से जब महमुद गजनवी और मुहम्मद गोरी का इस देश पर आक्रमण हुआ तो ये राजपुत राज्य संगठित होकर इन यवनों का सामना न कर सके ।

इन राजाओं की दृष्टि भी इतनी सीमित थी कि वे यवनों के इन आक्रमणों के भावी परिणामों के विषय में भी कुछ नहीं सोचते थे। अनेक वार मुँहकी खाने के पश्चात भी मुहम्मद गोरी ने अचूक तिरन्दाज और अदम्म साहसी पृथ्वीराज चौहान को सन् ११९३ ई. में पराजित किया और दिल्ली में यवन शासन का केन्द्र स्थापित कर दिया। जयचन्द भी मुहम्मद गोरी द्वारा पराजित हो गया। ऐसा कोइ शासक न रहा जो यवनों के आक्रमण का दृढतापूर्वक सामना कर सकें। सन् ११९७ ई. में वख्तियार खिलजी ने विहार पर आक्रमण कर वहाँ के वौद्ध विहारों एवं पुस्तकालयों को नष्ट करके वंगाल तक इस्लाम का झण्डा फहरा दिया। इस प्रकार बारहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते भारत में मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया और हिन्दूओं की राजनीतिक सत्ता भंग हो गई।

इसके पश्चात मुस्लिम शासन का इतिहास बड़ा कठोर एवं शोषित था। एक ऐसे कठोर सैनिक शासन के दर्शन होंगे जिसका कार्य जनता से मनमाना कर वसूल करने, धार्मिक अत्याचार करने, आर्थिक शोषण करने तथा अपनी शक्ति बढ़ाकर राज्य विस्तार करने के अतिरिक्त अन्य कुछ न था। इस काल के मुस्लिम शासक अधिकतर विलासी, अयोग्य और निकम्मे थे। उत्तराधिकार आदि का कोई नियम उस समय हविगत नहीं होता। दल बन्दी और षडयन्त्रों का स्थान - स्थान पर बोल बाला था। आये दिन राज सिंहासन के लिए संघर्ष होता रहता था और थोड़े-थोड़े समय के बाद शासन बदलते रहते थे। हिन्दूओं पर एक से बढकर एक अत्याचार होते थे।

मुगलों के आगमन नें देश की राजनीति में एक नयाँ अध्याय का सूत्रपात किया। अकबर ने अपना सम्पूर्ण प्रजा की सदभावना प्राप्त करने का सराहनीय प्रयास किया। उसने सभी धर्मो के प्रति ऐसी उदार नीति अपनाई जो भारत में मुस्लिम शासन के इतिहास में अपना असाधारण महत्व रखती है। उसके शासन काल में प्रजा को पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षा मिली। आर्थिक दृष्टि से भी प्रजा में सुधार हुवा। तत्कालिन

धार्मिक स्वतन्त्रता तो ऐतिहासिक वस्तु है । संगीत साहित्य और कला को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । हिन्दी का अधिकांश वैष्णव साहित्य ईसी काल में रचा गया । अकबर ने वैष्णव भक्ति के आन्दोलन कर्त्ताओं को संरक्षण एवं आर्थिक सहायता प्राप्त की । महात्माओं से वह सदैव मिलने को उत्सुक रहता था । भक्त कवियों को सदैव अपनाने की चेष्टा की परन्तु इन कवियों ने सदैव ही उसके वैभव का तिरस्कार किया । वे तो उस लीलामय श्री कृष्ण के परम् भक्त थे जिसकी मधुर मूर्ति ने जनता के हृदय को आन्दोलित कर दिया था । भगवान की कृपा के सम्मुख भला इन भक्त कवियों के लिए एक सम्राट का वैभव क्या मूल्य रख सकता था ? इसीलिये तो एक भक्त कवि ने अकबर के निमंत्रण को यह कह कर ठुकरा दिया था -" सन्तन कहा सीकरी सों काम ।"

इन कवियों के काव्य को तो जनता के द्वारा प्रेरणा प्राप्त हुई थी , सम्राट के विषय मे तो यही समझना चाहिए कि वह पूर्ववर्ती शासकों की भाँति बाधा बनकर नहीं खड़ा हुआ था । अतः ये कवि जनाश्रित ही थे, सम्राटाश्रित नहीं । इनका लक्ष्य जनता को ही प्रभावित करना था सम्राट को प्रभावित कर उससे कुछ चाँदी के टुकड़े प्राप्त कर सुख और ऐश्वर्य में निमग्न रहना नहीं था ।

भक्तराज सूरदास भी इन्ही कवियों में से एक थे । वे सन् १४७८ ई. के लगभग पैदा हुए थे और अकबर के सुव्यवस्थित राज्य काल में जीवित थे । वे भी एक ऐसे ही भक्तराज थे जिसका राज्य वैभव से कोई सरोकार नहीं था । कृष्ण भक्ति ही उनके लिए सारे संसार का वैभव था । उनके लिए सारे संसार का वैभव भी कृष्ण की कृपा प्राप्ति के सम्मुख तुच्छ था । वे तो अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे । उन्होंने काव्य की प्रेरणा जनता की भावना से प्राप्त की थी । अतः उनके अध्ययन के लिए राजनीतिक परिस्थिति से भी अधिक सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिए ।

सामाजिक परिस्थितियाँ

हिन्दू समाज कालान्तर से अनेक जातिओं, अनेक सम्प्रदायों तथा अनेक वर्गों के रुप में विभाजित होता चला आ रहा है । भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दू सत्ता का विनाश तो हो ही गया, साथ ही धर्म मन्दिरों का विध्वंश और तिर्थों की दुर्व्यवस्था एवं पतन भी हो गया था । मुस्लिम शासकों ने हिन्दू धर्म का जो तिरस्कार एवं अपमान किया उससे हिन्दू समाज निराशा के सागर मे डूब गया । भय, अत्याचार तथा प्रलोभन के परिणाम स्वरुप कुछ व्यक्तियों और जातियों ने अपना धर्म परिवर्तन भी कर डाला । सर्व प्रथम इस दृष्टि से वैष्णव भक्ति के देश व्यापी आन्दोलन का नाम लिया जा सकता है । इस आन्दोलन ने जनता के जीवन के लिए एक सार्थक उद्देश्य प्रदान किया परन्तु यह कार्य परोक्ष रुप एवं अज्ञात ढंग से हुआ और हिन्दूओं की धर्म रक्षा का सबसे बड़ा उपाय यही सिद्ध हुआ । धर्म परिवर्तन के कारण हिन्दूओं ने सहयोग नहीं दिया । वे स्वभावतः मुसलमानों को तिरस्कार एवं घृणा की दृष्टि से देखने लगे । हिन्दूओं ने स्वभावतः अपनी आत्म रक्षा के लिए कुछ तत्कालिन और व्यावहारिक उपाय की ओर ध्यान देने लगे । छुआछुत, खानपान, शादी विवाह आदि के नियम पहले से भी अधिक कठोर होगये । इस घृणामूलक मनोवृत्ति के अतिरिक्त तत्कालीन समाज कुछ अन्य कुप्रथाओं की महा व्याधि से भी पीड़ित था । पर्दे की कुप्रथा की प्रचलन होने के कारण मुस्लिम समाज में स्त्री को केवल भोग की वस्तु माना जाता था । हिन्दूओं पर भी इस विचार का प्रभाव पड़ा । इस काल के सभी संतों एवं महात्माओं ने नारी को भोग की वस्तु समझने पर उसकी घोर निन्दा की है । उन्होंनें पुरुष वर्गो को नारी से अलग रहने की शिक्षा दी और इसी में कल्याण बताया । इससे अलग रहकर भगवान की सच्ची भक्ति वह कर सकता है । महात्मा कबीर ने तो यहाँ तक कह दिया -

नारी की झाईं पड़त अंधा होत भुजंग ।

कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी को संग ।

इसी प्रकार उस समय की परिस्थितियों ने वैराग्य भावना का बहुत प्रचार किया । सन्तों एवं महात्माओं ने धन वैभव के प्रति उपेक्षा और त्याग की भावना का उपदेश दिया । शंकराचार्य के मायावाद के प्रभाव से वैराग्य की भावना को ही सर्वश्रेष्ठ आदर्श माना गया । इन्हीं सामाजिक परिस्थितियों के बीच भक्ति आन्दोलन का विकास हुआ ।

धार्मिक परिस्थितियाँ

अध्यात्मिक विचारों के क्षेत्र में पहले भक्ति मार्ग को प्रशस्त करना आवश्यक था । जब तक भक्ति धर्म को दार्शनिक एवं शास्त्रीय आधार प्राप्त न हो जाय तब तक शंकराचार्य का तर्कसम्मत एवं सर्वस्वीकृत अद्वैत सिद्धान्त का खंडन किस प्रकार मान्य हो सकता था । भक्ति सम्प्रदाय के आर्चायों की समझ में यह वात आ गयी । अतः उन्होंने किसी न किसी अंश मे अद्वैत सिद्धान्त को ग्रहण किया साथ ही उनकी ऐसी व्याख्यायायें प्रस्तुत की जिनसे जीव और ब्रम्ह में प्रेम भक्ति का संबन्ध कल्पित हो सका । नाथ मुनि, यमुनाचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य आदि आचार्यो के नाम विशेष उल्लेखनीय है । गुरु रामानन्द जी ने राम भक्ति का देश व्यापी प्रचार किया । कृष्ण भक्ति का प्रचार करने वालों में बल्लभाचार्य जी का स्थान अग्रगण्य है ।

अतः व्यक्तित्व की विशालता काव्य शैली की महत्ता एवं वाग्विदग्धता निश्चित रुपेण उनकी सहृदयत्ता तथा भावुकता को निर्दिष्ट करती है । वे काव्यशास्त्र के परम विज्ञ आचार्य थे । एक ओर उनकी कविताओं में भाव पक्ष का चरम विकास दिखाई देता है वहीं दूसरी ओर उनका कलापक्ष भी न्यून नहीं कहा जा सकता । सूरदास मन के गहरे थे और सूक्ष्म भावों के पारखी चित्रकार भी । इनकी अभिव्यंजना शक्ति असीम है ।

भक्तिरस के गायक कवियों में सूरदास का स्थान सबसे ऊँचा है । यद्यपि उनके काव्य मे कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन चित्रण नहीं है तथापि उनके बालरुप का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण उन्होंने किया है वैसा चित्रण हिन्दी में ही नहीं, विश्व की किसी भी भाषा में नहीं मिल सकता । श्रृंगार रस के अन्तर्गत भी सूर की समता करना सहज नहीं है । श्री कृष्ण और राधा के रतिभाव का वर्णन करने में भी उनकी उपमा नहीं मिल सकती । वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत भ्रमरगीत नामक प्रसंग में तो सूर की कवित्व शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है । उनके श्रृंगार वर्णन में जयदेव और विद्यापति जैसी लौकिकता नहीं आने पाई है । वियोग की जितनी भी अन्तर्दशायें हो सकती है इन सबका चित्रण सूर के भ्रमरगीत में प्रस्तुत है । इन्होंने कृष्ण और यशोदा का जो रुप चित्रित किया है उसमे विश्व व्यापी माता और पुत्र का प्रेम दिखाई देता है ।

प्रिय से संबन्धित वस्तुओं के प्रति हृदय में भाव-कुभावों का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है । कृष्ण, गोप-गोपी, यशोदा-नन्द आदि के प्राण है । उनसे संबन्धित प्रत्येक वस्तु उनके लिए अत्यन्त प्रिय है । कृष्ण से संबन्ध रखने वाली प्रत्येक वस्तु जो संयोग के समय अत्यन्त सुखदायक प्रतीत होती है उनके मथुरा चले जाने पर वे ही वस्तुएँ दुखदायी प्रतीत होती है ।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

१) सूरदास – प्रो. दामोदर गुप्त

२) सूरदास – पं. रामचन्द्र शुक्ल

३) सुरभि मांसा – डा. ब्रजेश्वर वर्मा

४) महाकवि सूरदास – आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी

५) सूरसाहित्य – डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी

६) सूरसौरभ – श्री मुन्शी राम शर्मा

७) सूर का भ्रमर गीत एक अन्वेषण -विशम्भर नाथ उपाध्याय

८) सूर की भाषा -डा. प्रेम नारायण टण्डन

९) अष्टछाप - डा. धिरेन्द्र वर्मा